* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

वर्ष ९८

संख्या ४

गीताप्रेस, गोरखपुर

बालरूप श्रीराम

भगवती श्रीजगदम्बिका

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् ॥

वर्ष ९८ | **गोरखपुर, सौर वैशाख, वि० सं० २०८१, श्रीकृष्ण-सं० ५२५०, अप्रैल २०२४ ई०** | **संख्या ४**
पूर्ण संख्या ११६९

श्रीजगदम्बिका-स्तवन

तव च का किल न स्तुतिरम्बिके! सकलशब्दमयी किल ते तनुः ।
निखिलमूर्तिषु मे भवदन्वयो मनसिजासु बहिःप्रसरासु च ॥
इति विचिन्त्य शिवे! शमिताशिवे! जगति जातमयत्नवशादिदम् ।
स्तुतिजपार्चनचिन्तनवर्जिता न खलु काचन कालकलास्ति मे ॥

'हे जगदम्बिके! संसारमें कौन-सा वाङ्मय ऐसा है, जो तुम्हारी स्तुति नहीं है; क्योंकि तुम्हारा शरीर तो सकलशब्दमय है। हे देवि! अब मेरे मनमें संकल्पविकल्पात्मक रूपसे उदित होनेवाली एवं संसारमें दृश्यरूपसे सामने आनेवाली सम्पूर्ण आकृतियोंमें आपके स्वरूपका दर्शन होने लगा है। हे समस्त अमंगलध्वंसकारिणि कल्याणस्वरूपे शिवे! इस बातको सोचकर अब बिना किसी प्रयत्नके ही सम्पूर्ण चराचर जगत्में मेरी यह स्थिति हो गयी है कि मेरे समयका क्षुद्रतम अंश भी तुम्हारी स्तुति, जप, पूजा अथवा ध्यानसे रहित नहीं है। अर्थात् मेरे सम्पूर्ण जागतिक आचार-व्यवहार तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न रूपोंके प्रति यथोचितरूपसे व्यवहृत होनेके कारण तुम्हारी पूजाके रूपमें परिणत हो गये हैं।' **[महामाहेश्वर आचार्य अभिनवगुप्त]**

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर वैशाख, वि० सं० २०८१, श्रीकृष्ण-सं० ५२५०, अप्रैल २०२४ ई०, वर्ष ९८—अंक ४

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- श्रीजगदम्बिका-स्तवन	३
२- सम्पादकीय	५
३- कल्याण	६
४- बालरूप श्रीराम **[आवरणचित्र-परिचय]**	७
५- नरसेवा—नारायणसेवा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	८
६- शिवसंकल्प करे मन मेरा, शुभसंकल्प करे (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	१०
७- प्यारे कन्हैया (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१२
८- धर्म अविनाशी तत्त्व है (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	१३
९- नामजपकी विलक्षणता **[साधकोंके प्रति]** (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१५
१०- 'संसार रामकी अयोध्या है' [स्वामी श्रीरामकृष्ण परमहंसके सदुपदेश]	१६
११- दैवी सम्पत्तिकी परम्परा (पूज्य स्वामी श्रीप्रकाशानन्दजी महाराज) [प्रेषक—श्रीभरतजी दीक्षित]	१७
१२- धर्म, परम्परा और सम्प्रदाय (डॉ० श्रीविन्ध्येश्वरी प्रसादजी मिश्र 'विनय')	१९
१३- 'अशान्तस्य कुत: सुखम्' (डॉ० श्रीबसन्तबल्लभजी भट्ट)	२०
१४- निन्दासे शत्रुताका जन्म होता है **[बोध-कथा]**	२२
१५- रामकथाओंमें लोकविश्वास (श्रीसुधीरजी निगम)	२३
१६- धर्म व्यावहारिक है (ब्रह्मलीन परम पूज्य स्वामी श्रीसत्यमित्रानन्द गिरिजी महाराज) [प्रस्तुति—श्रीमती गरिमाजी श्रीवास्तव]	२५
१७- महारानी अहिल्याबाई होल्करकी तीर्थसेवा (डॉ० श्रीराधेमोहनप्रसादजी)	२७
१८- श्रीकुलशेखर आळवार **[सन्त-चरित]**	२९
१९- कर्म और निष्काम कर्म (श्री गो०दा० फेगड़ेजी)	३१
२०- भगवत्कथा-श्रवणकी महिमा (श्रीराजेन्द्र प्रसादजी द्विवेदी)	३४
२१- रत्न-मंजूषा गीता (डॉ० श्रीसुरेशचन्द्रजी शर्मा)	३६
२२- वर्टिगो (डॉ० श्रीशिवशक्तिजी द्विवेदी) **[आरोग्य-चर्चा]**	३९
२३- जम्मूस्थित त्रिकुटा पहाड़ीपर विराजमान देवी त्रिकुटा (श्रीप्रमोदकुमारजी श्रीवास्तव) **[तीर्थ-दर्शन]**	४०
२४- गायका दूध—आहार भी और औषध भी **[गो-चिन्तन]** (प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़)	४१
२५- सुभाषित-त्रिवेणी	४३
२६- व्रतोत्सव-पर्व **[ज्येष्ठमासके व्रत-पर्व]**	४४
२७- कृपानुभूति	४५
२८- पढ़ो, समझो और करो	४७
२९- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१ - बालरूप श्रीराम	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२ - भगवती श्रीजगदम्बिका	(,,)	मुख-पृष्ठ
३ - बालरूप श्रीराम	(इकरंगा)	७

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / एकवर्षीय शुल्क ₹300 मासिक अंक साधारण डाकसे
पञ्चवर्षीय शुल्क ₹2500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / पञ्चवर्षीय शुल्क ₹1500 मासिक अंक साधारण डाकसे
विदेशमें Air Mail शुल्क वार्षिक US$ 50 (₹4,000) / Cheque Collection Charges 6 $ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका** आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**, सहसम्पादक—**कृष्णकुमार खेमका**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org**	e-mail : **kalyan@gitapress.org**	✆ **09235400242 / 244**	**WhatsApp : 09235400242**
पुस्तक-बिक्रीविभाग :	e-mail : **booksales@gitapress.org**	✆ **09235400242 / 244**	**WhatsApp : 09235400244**

सदस्यता-शुल्क —**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org के **Kalyan** पर click करके **Subscribe** option पर click करें।

'कल्याण' के मासिक अङ्क www.gitapress.org के **E-Books Option** पर नि:शुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥

॥ श्रीहरिः ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥

ऋग्वेदकी यह श्रुति हमें जीनेका सही ढंग कितनी स्पष्टतासे बताती है! ऋषि कहते हैं—हम अपने कानोंसे अच्छी बातें सुनें। अपनी आँखोंसे शुभका दर्शन करें। अपने सुदृढ़ अंगोंसे लोक-कल्याणमें जीवन-यापन करें।

हमारे कानोंमें अच्छे-बुरे सभी प्रकारके शब्द आते हैं, किंतु यह हमपर है कि हम किस बातपर ध्यान देते हैं। इसी प्रकार हमारी आँखोंके आगे अच्छे-बुरे सभी प्रकारके दृश्य आते रहते हैं। किंतु हम अपनी रुचिके अनुसार उनपर ध्यान देते हैं। हमारी इच्छाशक्ति (Will Power) हमें इस चयनमें सहायता देती है।

सेवा-भाव कल्याणकारी प्रवृत्ति है। किंतु इसके लिये प्राथमिक आवश्यकता एक स्वस्थ और सबल शरीरकी है। इस वैदिक श्रुतिमें यही प्रार्थना की गयी है कि हम आजीवन स्वस्थ रहकर अपनी सामर्थ्यके अनुसार दूसरोंके हितचिन्तनमें अपना समय सार्थक करें।

—सम्पादक

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कल्याण

याद रखो—सम्पूर्ण विश्व भगवान्‌की अभिव्यक्ति है। भगवान् ही इस समस्त विश्वके निमित्त-कारण हैं और भगवान् ही उपादान-कारण हैं। समस्त विश्व भगवान्‌में है और भगवान् सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त हैं; परंतु भगवान् इतने ही नहीं हैं, वे विश्वातीत भी हैं। वे सर्वातीत होनेके साथ ही सर्वरूप भी हैं।

याद रखो—भगवान् नित्य परिपूर्ण-स्वरूप हैं; अनन्तस्वरूप हैं। उनका ज्ञान, उनकी शक्ति, उनका ऐश्वर्य, उनका प्रेम तथा उनका आनन्द अनन्त है। वे नित्य परमानन्दमय हैं—सच्चित्-परमानन्दमें प्रतिष्ठित हैं। इस चिदानन्दके स्वभावसे ही वे अनन्त रूपों, अनन्त भावों, अनन्त कर्मों, अनन्त विभूतियों तथा अनन्त महिमाके द्वारा अपनेको व्यक्त करते हैं। इस सृष्टिका प्रत्येक कण उनके परिपूर्ण स्वरूपसे पूर्ण है।

याद रखो—परिवर्तनशील विविध स्वरूप सृष्टिके रूपमें अभिव्यक्त होनेपर भगवान् अपने निर्विकार परिपूर्ण स्वरूपसे कभी लेशमात्र भी च्युत नहीं होते। उनकी सृष्टि-विधायिनी अनन्त शक्तिमें, उनके अनन्त ज्ञानमें, उनके अनन्त प्रेममें, उनकी अनन्त सत्तामें, उनके अमित ऐश्वर्यमें तथा उनके असीम प्रेममें कभी जरा भी संकोच नहीं होता। यह सारी सृष्टि उनका आत्मप्रकाश, आत्मविनोद और आत्मसम्भोग है।

याद रखो—वे ही भगवान् अपने आनन्दमय स्वरूप या इच्छासे दिव्य साकार रूपमें प्रकट होते हैं, उनको कोई उत्पन्न नहीं करता, वे किसी कर्मसे बाध्य नहीं होते, वे पांचभौतिक शरीरको धारण नहीं करते। वे अजन्मा होकर ही जन्म ग्रहण करते हैं, वे नित्य-सहज-निर्विकार रहकर ही नाना प्रकारकी विकार-लीलाको स्वीकार करते हैं, वे सम्पूर्ण लोकोंके नियामक, सर्वलोकमहेश्वर रहते हुए ही साधारण मानवके सदृश व्यवहार करते हैं, वे देश-कालसे अतीत रहकर ही देश-कालके भीतर अपनेको प्रकट करते हैं, वे समस्त परिणामोंसे सहज अतीत रहकर ही विभिन्न प्रकारके परिणाम-रूपोंमें अपनेको व्यक्त करते हैं। पर यह सब करते हैं—अपनी आनन्दमयी सहज इच्छासे ही। न वे कर्मसे बाध्य हैं, न उनका कर्मबन्धनसे भौतिक जन्म ही होता है।

याद रखो—भगवान् ही गुणातीत हैं, भगवान् ही नित्य-निर्गुण तथा निराकार हैं, भगवान् ही सृष्टिकर्ता, सृष्टिके नियामक, सर्वव्यापी, सगुण निराकार हैं, भगवान् ही भगवत्स्वरूप, दिव्य सगुण साकार, ऐश्वर्य-माधुर्य-सौन्दर्यकी अनन्त निधि, अपार करुणावरुणालय, परम प्रेमास्पद हैं।

याद रखो—भगवान् तुम्हारे अपने हैं, तुम भगवान्‌के अपने हो। इस नित्य-आत्मैक्यको भूल जानेके कारण ही तुम दुखी, अशान्त और सन्तप्त हो। यह भी भगवान्‌की दृष्टिसे भगवान्‌की विचित्र लीला ही है। तुम जब भगवान्‌के साथ, जो तुम्हारा नित्य अभिन्न सम्बन्ध है, उसे समझ लोगे, तब फिर तुम्हें लीलामयकी प्रत्येक लीलामें उनके आनन्दमय स्पर्शका अनुभव होगा। तुम्हारा जीवन तब अपने आनन्दमय सहज स्वरूपको प्राप्त करके आनन्दस्वरूप हो जायगा।

याद रखो—जबतक तुम भगवान्‌के इस नित्य सहज अभिन्न आत्मसम्बन्धको नहीं जान लोगे, तबतक तुम सहज आनन्दस्वरूप होनेपर भी अभावके दु:खानलसे दग्ध होते रहोगे। अशान्तिकी प्रचण्ड अग्निमें जलते रहोगे।

याद रखो—तुम्हारा यह अभावदु:ख जगत्‌की किसी भी परिस्थिति, अवस्था, पदार्थ या प्राणीसे नहीं मिटेगा। तुम यहाँ खोजते-खोजते एकके बाद दूसरे मोहजालमें फँसते रहोगे तथा नये-नये अभावकी आगसे जलते रहोगे। अतएव भगवान्‌को तथा अपनेको समझो—'भगवान् तुम्हारे तथा तुम भगवान्‌के' इस तत्त्वका अनुभव करो। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

बालरूप श्रीराम

बालरूप श्रीराम सौन्दर्यके मूर्तिमान् स्वरूप हैं। उनके उस मुनि-मनहारी स्वरूपको देखकर महाराज दशरथ-कौसल्यासहित समस्त अयोध्यावासी नहीं अघाते थे। उनकी रूप-माधुरी इतनी मनोहर थी कि एक बार भी जो इस सौन्दर्य-माधुर्यका रसपान कर लेता था, सदाके लिये वह श्रीरामका ही होकर रह जाता था। जो प्रभु मन, कर्म और वाणीसे अगोचर हैं, वही आज अयोध्याके नर-नारियोंके आकर्षणका केन्द्र बने हुए हैं। भगवान् श्रीराम चारों भाइयोंके साथ अपने मनोहर चरित्रसे नित्यप्रति अयोध्यावासियोंको धन्य करते फिरते हैं। तीनों लोकोंका सौन्दर्य भी भगवान् श्रीरामके सौन्दर्यके सामने फीका था।

श्रीराम चारों भाइयोंमें सबसे बड़े थे। बड़प्पन तो उनमें कूट-कूटकर समाया हुआ था। इसलिये वे मर्यादाके पालनमें सदैव सावधान रहते थे। प्रातः उठते ही माता-पिता और गुरुके चरणोंमें प्रणामके साथ ही उनका नित्यकर्म प्रारम्भ होता था। वे सदैव अपने व्यवहारमें ध्यान रखते थे कि उनके किसी भी क्रिया-कलापसे किसीको कोई कष्ट न हो। खेलमें भी वे सदैव सावधान रहते थे और अपने भाइयों तथा साथी बालकोंका खूब ध्यान रखते थे। उन्हें प्रसन्न रखनेका हर तरहसे प्रयत्न करते थे। इसलिये केवल राजमहलके लोग ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण अयोध्यावासी उन्हें प्राणोंकी तरह चाहते थे। बाल, युवा, वृद्ध चाहे कोई भी हो, सब-के-सब श्रीरामकी एक झलक पाने और उनसे बातचीत करनेके लिये लालायित रहते थे। वे गुरुजनोंका पूरा सम्मान करते थे। सोनेसे पूर्व नित्यप्रति माता-पिताका चरण दबाते थे। छोटे भाइयोंका तो वे सदा ही ध्यान रखते थे। जबतक छोटे भाई कलेवा न कर लें, तबतक स्वयं भी कलेवा नहीं करते थे। बड़ोंके प्रति आदर और छोटोंको स्नेह प्रदान करना यही उनका व्रत था।

आज तो माँ कौसल्याने विभिन्न अलंकारोंसे प्रभुका खूब शृंगार किया है। उनका शरीर नीलकमलकी तरह है। वे नखसे शिखतक अत्यन्त सुन्दर और सुखदायक हैं। भगवान्के मुखमण्डलपर अद्भुत तेज है। उनके हाथोंमें धनुष-बाण और कन्धेपर सुन्दर तरकश है। वे अनेक रत्नोंसे अलंकृत पीली झगुलिया पहने हुए हैं, जिससे उनके बदनकी श्यामल आभा झलक रही है। कमरके कमरबन्दमें मोतियोंकी लड़ियाँ लगी हैं। सिरपर सुनहरी पगिया, माथेपर सुन्दर टीका और कानोंमें सुन्दर कुण्डल सुशोभित हैं। उनके पैरोंमें सुन्दर पैजनियाँ हैं, कमरमें मणि और सुन्दर रत्नोंसे जटित किंकिणी है। वक्षःस्थलपर भृगुलताका चिह्न और कण्ठमें सुन्दर हार तथा मनोहर गजमुक्ता शोभायमान है। उनकी आँखोंसे अपार स्नेहकी सुधावृष्टि हो रही है। ऐसे कौसल्यानन्दन श्रीरामका दर्शन करनेवाले अयोध्यावासियोंके भाग्यकी तुलना भला कौन कर सकता है?

गोस्वामीजी कहते हैं—

पग नूपुर औ पहुँची करकंजनि मंजु बनी मनिमाल हिएँ।
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकै पुलकैं नृपु गोद लिएँ॥
अरबिंदु सो आननु रूप मरंदु अनंदित लोचन-भृंग पिएँ।
मनमो न बस्यौ अस बालकु जौं तुलसी जगमें फलु कौन जिएँ॥

नरसेवा—नारायणसेवा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

एक उच्चकोटिके विरक्त ज्ञानी महात्मा थे। उन समदर्शी महात्माके सत्संगमें बड़े-से-बड़े राजा-महाराजासे लेकर गरीब-से-गरीब मनुष्यतक भी आया करते थे। महात्माजी आनेवाले सत्संगियोंको उपदेश दिया करते थे। उनका प्रधान कथन यह होता था कि निष्काम भावसे दुखी आतुर प्राणियोंको सुख पहुँचानेसे परमात्मा मिलते हैं।

एक दिनकी बात है कि उस नगरके राजा उन महात्माजीके पास आये। राजाने महात्माजीके चरणोंमें अभिवादन करके पूछा—'क्या इस युगमें भी भगवत्प्राप्ति हो सकती है? और यदि हो सकती है तो उसका सरल उपाय क्या है?' महात्माजीने उत्तर दिया—'परमात्मा प्राणिमात्रके हृदयमें अवस्थित है। अतः सम्पूर्ण प्राणिमात्रकी निष्कामभावसे तत्परतापूर्वक सेवा करनेपर परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है; प्राणियोंमें भी जो दुखी, अनाथ और आतुर हों, उनकी सेवा करनेसे और भी शीघ्र कल्याण हो सकता है।' इस उपदेशको सुनकर राजा अपने स्थानपर लौट गये और उसी दिनसे वे अपने तन, मन, धनद्वारा निष्कामभावसे प्राणिमात्रकी एवं दुखी और आतुरोंकी सेवा विशेषरूपसे करने लगे।

एक वर्ष बीतनेपर राजाने एक दिन महात्माजीके पास जाकर कहा—'मुझे आपके आज्ञानुसार अनुष्ठान करते सालभर हो गया, किंतु अभीतक परमात्माकी प्राप्ति नहीं हुई।' महात्माजी बोले—'राजन्! धैर्य रखो और निष्कामभावपूर्वक दुखियोंकी सेवा उत्साहके साथ विशेषरूपसे करते रहो। करते-करते तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध होकर परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी।' यह सुनकर राजा घर लौट गये एवं पहलेकी अपेक्षा और भी विशेष उत्साहके साथ दुखियोंकी सेवा करने लगे।

इस प्रकार करते फिर एक वर्ष व्यतीत हो गया, परंतु परमात्माकी प्राप्ति नहीं हुई। तब राजाने पुनः महात्माजीके पास जाकर प्रार्थना की कि 'महाराज! आपके आज्ञानुसार सेवाके अनुष्ठानका कार्य चालू है, मैंने आपके आदेशके अनुसार अपना तन, मन, धन—सब कुछ सेवामें लगा रखा है। अबतक राज्यकी अधिकांश धनराशि परोपकारके कार्योंमें व्यय हो चुकी है, फिर भी परमात्माकी प्राप्ति होनेका मुझे कोई भी लक्षण नहीं दिखलायी पड़ता।' इसपर महात्माजीने कहा—'तुम दृढ़ विश्वास रखो, जरा भी शंका न करो; तुम्हें निश्चय ही परमात्माकी प्राप्ति होगी। तुम बहुत ही सुन्दर रीतिसे तथा शुद्ध भावसे दीन-दुखियोंकी सेवा कर रहो हो; परंतु वास्तवमें जिस प्रकारके दुखी, अनाथ और आतुरकी जैसी सेवा होनी चाहिये, वैसी सेवा अबतक तुम्हारे द्वारा नहीं बन पड़ी है। परंतु परम उल्लास तथा श्रद्धाके साथ सदा-सर्वदा करते-करते कभी-न-कभी वैसी सेवा भी बन ही जायगी। अतः तुम वशमें किये हुए मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको निःस्वार्थभावसे केवल भगवत्प्रीत्यर्थ दुखियोंकी सेवामें भली-भाँति लगा दो।'

महात्माजीके अमृतमय वचनोंका श्रवण करके राजा बड़े प्रसन्न हुए और घर आकर महात्माजीके आदेशानुसार ही पुनः अत्यन्त उत्साहसे सबके हितके कार्यमें लग गये। वे अब दीन, दुखी, दरिद्र और अनाथोंके रूपमें नारायणकी विशेषरूपसे सेवा करने लगे।

उसी नगरमें एक दुखी अनाथ विधवा स्त्री रहती थी, जो प्रतिदिन जंगलसे सूखा ईंधन लाकर शहरमें बेचा करती और उसीसे अपना तथा अपने इकलौते नन्हेसे पाँच वर्षके लड़केका निर्वाह किया करती। वह जो कुछ कमाती, उससे उन दोनोंकी उदरपूर्ति कठिनतासे होती थी, अतः उसके पास एक भी पैसा बच नहीं पाता था। एक दिन जब वह लड़केको साथ लिये ईंधन लाने जंगलको जा रही थी, तब उस बालकने रास्तेमें एक धनी लड़केको लट्टू, फिरकी आदि खिलौनोंसे खेलते देखा। उसे देखकर उस बालकने अपनी माँसे लट्टू, फिरकी आदि ला देनेको कहा। बच्चेकी बात सुनकर माता बोली—'बेटा! मैं गरीब आदमी हूँ, मेरे पास पैसे कहाँ? मैं तो लकड़ी बेचकर जो पैसे लाती हूँ, उससे पेट ही कठिनतासे भर पाता है, फिर खिलौने कहाँसे खरीदूँ?' निर्दोष लड़का

धनी और गरीबका भेद समझता नहीं था। उसे तो खिलौनेका आग्रह था। वह रोने लगा और वहीं लोट गया। माता किसी तरह उठाकर उसे घर लायी। उसने लड़केको बहुत कुछ समझाया, पर लड़केने एक भी न सुनी। इसी कारण उस दिन वह लकड़ी लाने भी नहीं जा सकी, दिनभर दोनोंको फाँका करना पड़ा। बच्चेने अपना हठ नहीं छोड़ा, वह रोता ही रहा। उसके दु:खसे दुखी होकर माँ भी रोती रही। उसके पास पैसा तो था नहीं कि वह बच्चेका हठ पूरा कर सकती। अर्धरात्रिका समय था, निस्तब्ध रात्रि थी। सब सो रहे थे, परंतु झोंपड़ीके कोनेमें गरीब माँ-पुत्र रो रहे थे। लड़केके रोनेकी आवाज तीव्र थी। महल समीप ही था। महलमें सोये राजाके कानोंमें रोनेकी ध्वनि पहुँची। करुणापूर्ण रुदनकी ध्वनिसे राजा चौंक पड़े और उठकर इधर-उधर देखने लगे। राजाने कोतवालको बुलाकर कहा—'देखो, किसी दुखी आतुर व्यक्तिके रोनेकी आवाज आ रही है, तुम शीघ्र जाओ और उसे आश्वासन देकर मेरे पास लाओ।' कोतवाल तुरन्त उसके पास पहुँच गया और उससे बोला—'चलो! महाराज साहब तुमको बुला रहे हैं।' बेचारी ईंधन बेचनेवाली स्त्री कोतवालको देखते ही भयसे काँपने लगी और बोली—'सरकार! यह छोटा बच्चा है; रोता है, इसके अपराधको क्षमा करें।' कोतवालने धीरज बँधाते हुए कहा—'तुम भय मत करो, मेरे साथ चलो, राजाने दया करके ही तुमको बुलाया है।' किंतु उस बेचारीकी घबराहट दूर नहीं हुई। उसने सोचा—बच्चेके रोनेसे राजाकी नींद टूट गयी है, इसलिये वे दण्ड देंगे; पर उपाय ही क्या, जब कि वे बुला रहे हैं तो जाना ही पड़ेगा। वह राजाके पास जाने लगी। कोतवालके वचनोंसे उस स्त्रीका रोना तो बन्द हो गया, परंतु भयके मारे उसका शरीर काँप रहा था और लड़का रोता हुआ उसके पीछे-पीछे चला जा रहा था।

कोतवालके साथ दोनों राजमहलमें पहुँचे। राजाने इस करुणायुक्त दृश्यको देखकर उस भयभीत स्त्रीको आश्वासन देते हुए कहा—'बेटी! डर मत। बता, यह बच्चा किसलिये रो रहा है? मैं इसका कारण जानना चाहता हूँ।' इसपर उस स्त्रीने सारी बात ज्यों-की-त्यों बतला दी। वह बोली—'महाराज! मैं जंगलसे सूखी लकड़ियाँ लाकर बेचा करती हूँ, उसीसे अपना और इसका पेट भरती हूँ। आज मैं जब लकड़ी लाने जंगलको जा रही थी, तब रास्तेमें एक धनी लड़केको लट्टू, फिरकी आदिसे खेलते देखकर यह मचल उठा और इसने हठ कर लिया कि मुझे ऐसे ही खिलौने ला दे। इसी कारण यह रोने लगा। इसीसे मैं आज लकड़ी लाने भी न जा सकी, जिसके कारण यह भूखसे भी मर रहा है। आधी रात बीत गयी; यह मानता नहीं, बराबर रो ही रहा है। मैंने बहुत प्रयत्न किया कि यह न रोये, पर छोटा बच्चा है, बेसमझ है, क्या किया जाय।'

राजाने तुरन्त महलके अन्दरसे साग, पूड़ी, मिठाई मँगवाकर दी और कहा—'मैं अभी खिलौने मँगा देता हूँ।' विधवा माताने लड़केको खिलानेकी बहुत चेष्टा की, किंतु हठी बच्चेने माँग पूरी न होनेके कारण कुछ नहीं खाया। माँ भी लड़केको बिना खिलाये कैसे खाती। तब राजाने कोतवालसे कहा—'अभी बाजार जाओ और यह लड़का जो-जो खिलौने चाह रहा है, वे जहाँ जिसके यहाँ भी मिलें, एक छबड़ी भरकर ले आओ।' कर्तव्यपरायण कोतवालने तत्काल खिलौनेके दूकानदारके घर जाकर उसे जगाया और उसी समय दूकान खोलकर एक छबड़ी खिलौने देनेको कहा। राजाकी आज्ञा थी, उसने तुरन्त एक छबड़ी खिलौने दे दिये। कोतवालने उनका उचित मूल्य चुकाकर छबड़ी लाकर राजाके सामने रख दी। राजाने वे सारे खिलौने बालकको सौंप दिये। बालक दोनों हाथोंमें जितना ले सका, लेकर हँसने और नाचने लगा। बालककी प्रसन्नता देखकर माताकी भी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रही।

तदनन्तर राजाने उन दोनोंको यथेष्ट भोजन कराकर तृप्त किया तथा बचे हुए खिलौने और भोजन उस बच्चेकी माँको सौंप दिये। माता और पुत्र—दोनों अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो अपनी झोंपड़ीमें लौट गये। राजाकी अनुमति पाकर कोतवाल भी अपने स्थानको लौट गया। उसी समय राजाको उस विज्ञानानन्दघन परमात्माके स्वरूपकी प्राप्ति हो गयी तथा उनके आनन्द और शान्तिकी सीमा नहीं रही।

शिवसंकल्प करे मन मेरा, शुभसंकल्प करे

(श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

चरित्रनिर्माणकी आधारशिला है—अहिंसा, मैत्री और प्रेम। सत्य और सदाचार, कर्म और श्रम, साधना, नैतिकता और प्रामाणिकता, सेवा और त्याग आदि भिन्न-भिन्न आदर्श उसीमेंसे प्रस्फुटित होते हैं। वेद इन्हीं आदर्शोंपर बल देता है। सामान्य मानव ऐसे ऊँचे आदर्शोंके पालनमें पग-पगपर कठिनाईका अनुभव करता है। वह हताश-सा हो उठता है। वैदिक ऋषि मानवकी निर्बलताओंको जानते थे, इसलिये वे उसे 'अमृत-पुत्र' कहकर उसके भीतर छिपी परम ज्योतिको प्रकट करनेके लिये उत्सुक रहते थे। वे कहते हैं—'अमृतपुत्रो! तुम क्या नहीं कर सकते? तुम्हारे पास मन-जैसी अद्भुत, वेगवान्, ज्योतिमान् महान् शक्ति है। उसे पहचानो, उसे समझो, उसका सदुपयोग करो। मत कहो तुम— '**पापोऽहं पापकर्माहम्**'— 'मैं पापी हूँ, पापकर्मी हूँ।' इससे क्या होगा, तुम सब कुछ कर सकते हो। माना सत्य और ऋतके आदर्श, अहिंसा और प्रेमके आदर्श हिमालय-जैसे ऊँचे हैं, पर तुम्हारा मन तो आदर्शके शिखरपर जाकर विजयकी पताका फहरा सकता है। मनकी अनुपम शक्तिका सदुपयोग करके भी तो देखो। फिर पाप-ताप, भय-विषाद, राग-द्वेष तुम्हारे पास फटकनेका भी साहस न कर सकेंगे। उठो, मनसे कहो—

'**यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥**'

'जागतेमें दूर जानेवाला, सोतेमें शरीरमें आनेवाला मेरा दूर जानेवाला मन तथा ज्योतिमान् इन्द्रियोंकी एक ज्योति हो, मेरा वह मन शिवसंकल्प करनेवाला हो, शुभ संकल्प करनेवाला हो।'

'**यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥**' (यजुर्वेद ३४। ३)

'मेरा मन ज्ञानका उत्पादक है, बुद्धिरूप है, स्मृतिका साधन है, अन्तःकरणमें आत्माका साथी है, नाशरहित है, ज्योतिःस्वरूप है। मनके बिना कोई भी कर्म नहीं किया जाता। मेरा यह मन शिवसंकल्प करनेवाला हो, शुभ संकल्प करनेवाला हो।' मनके सैलानीपन, मनकी शक्तियों, मनके कार्यकलापोंका वर्णन करके वेदका ऋषि उसके सदुपयोगका साधन बताता है—

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयते भीशुभिर्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ (यजुर्वेद ३४। ६)

'जिस प्रकार चतुर सारथि घोड़ोंकी लगाम अपने हाथमें रखकर उन्हें चलाता है, उसी प्रकार यह मन मनुष्यको इच्छानुकूल चलाता है। वह हृदयमें विराजमान है, सबका प्रेरक है, अत्यन्त वेगवान् है, जरा-जीर्णतासे रहित है। मेरा वह मन शिवसंकल्प करनेवाला हो, शुभ संकल्प करनेवाला हो।' मनकी इस महान् शक्तिको समझकर उसे शिवसंकल्पमय, शुभसंकल्पमय बनाया जा सकता है।

साधक पूछता है कि फिर भी यदि मनमें मलिन अथवा अशुभ विचार आ जायँ, तब क्या किया जाय? ऋषि उसका भी उपाय बताता है—'**परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि। परे हि न त्वा कामये।**' (अथर्ववेद ६। ४५। १)

'ओ मेरे मनके पाप! तू मुझसे दूर हट जा। तू कैसी गन्दी बातें करता है, दूर हट जा, मैं तुझे नहीं चाहता।' '**परोऽपेहि!**' दूर हट! भाग यहाँसे!—यों कहकर मलिन विचारको दुतकारकर दूर भगा देना चाहिये। उसे अपने पास ठहरने ही न देना चाहिये। काम, क्रोध आदि विकार मानवको फँसाते, सताते, ललचाते रहते हैं। ऋषि उनसे मुक्तिका उपाय बताते हैं—प्रार्थना। प्रभुकी प्रार्थना विकारोंके शमनकी रामबाण औषधि है—

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं
जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं
दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र॥

(ऋग्वेद ७। १०४। २२; अथर्ववेद ८। ४। २२)

'उल्लू, भेड़िये, कुत्ते, चकवा, चकवी, गरुड़ और गीध आदिकी भाँति सदैव मोह, क्रोध, मत्सर, काम, मद और लोभकी दुर्वृत्तियाँ मेरे मनको घेरे रहती हैं। हे इन्द्रदेव! इन हिंसक विकारों—दुर्वृत्तियोंको पत्थरपर रगड़-रगड़कर चूर कर दो, जिससे ये हमें प्रभावित न कर सकें। अन्धकारप्रिय, प्रकाशके शत्रु उल्लूकी वृत्ति है संशयीवृत्ति। क्रोधी और क्रूर भेड़ियेकी वृत्ति है—आक्रामक वृत्ति।'

दूसरों और अपनोंपर भी गुर्राकर दौड़नेवाले कुत्तेकी वृत्ति है—चाटुकार-वृत्ति। सभी जानते हैं कि कुत्ता किस प्रकार जरा-सी देरमें दुम हिलाने लगता है।

चकवा-चकवीकी वृत्ति है—असामाजिक वृत्ति।

ऊँची उड़ान भरनेवाले गरुड़की वृत्ति है—अभिमानी वृत्ति। दूसरोंकी सम्पत्ति छीन लेनेवाले गिद्धकी वृत्ति है—लोलुप-वृत्ति। ये सारे पशु-पक्षी इन अनेक दूषित वृत्तियोंसे, इन काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर आदि विकारोंसे ग्रस्त होकर रात-दिन इधर-से-उधर ठोकरें खाते रहते हैं। प्रभु हमारी रक्षा करें इन अशुभ वृत्तियोंसे।

अग्ने रक्षाणो अंहसः प्रति स्म देव रीषतः। तपिष्ठैरजरो दह॥ (सामवेद पू० २४)

अग्निदेव! तू पापोंसे हमारी रक्षा कर। अपने महान् तापद्वारा तू हमारे हिंसा-द्वेषके मलिन विचारोंको भस्म कर दे।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा॥

(यजुर्वेद ७। ४३)

'दीप्तिमान् प्रभो! अग्निदेव! हमारी समृद्धिके लिये तू हमें सन्मार्गसे ले चल। तुझे सारे मार्ग ज्ञात हैं। तू हमें कुटिल मार्गसे बचाकर परम आनन्दमय मार्गकी ओर ले चल।' वरुणदेवसे प्रार्थना है—

वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम॥

(ऋग्वेद १। २४। १५)

'वरुण! हम माता अदितिके लिये समर्पित होकर निष्पाप बनें और सभी बन्धनोंसे मुक्त हो जायँ।' **'गायन्तं त्रायते'** वाली गायत्री तो हमारी वेदमाता ही है। उनकी उपासनाकी अमित महिमा है—

धियो यो नः प्रचोदयात्

(ऋग्वेद ३। ६२। १०)

'प्रभु हमारी बुद्धिको उत्तम गुण, कर्म और स्वभावमें प्रेरित करें। चरित्रनिर्माण मूलतः बुद्धिपर ही निर्भर करता है। बुद्धि सत्पथपर है तो मनुष्य चरित्रवान् बनता है। बुद्धि बिगड़ी कि चरित्रहीन बनते देर नहीं लगती। इसलिये बुद्धिकी निर्मलता परम आवश्यक है। ऋषि कहते हैं—

राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे।

(ऋग्वेद ७। ६६। ८)

'तुम्हारी बुद्धि ऐश्वर्यको बढ़ानेवाली और अहिंसा-प्रधान हो।'

'भद्रं मनः कृणुष्व॥' (सामवेद उ० १५६०)

'हे प्रभु! हमारे मनको कल्याणमार्गमें प्रेरित करें।'

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आसुव॥ (ऋग्वेद ५। ८२। ५)

'हे सारे जगत्के उत्पादक प्रेरक देव! तू हमारे सारे दुराचरणोंको दूर कर दे और सभी कल्याणकारी गुण हममें भर दे।' मनकी अद्भुत शक्तिको भलीभाँति समझकर उसका भरपूर सदुपयोग करें। उसके माध्यमसे हम सब कुछ कर सकते हैं। शिवसंकल्पद्वारा, शुभ-संकल्पद्वारा हम उच्च-से-उच्च आदर्श प्राप्त कर सकते हैं। यदि कभी हमारे पैर लड़खड़ाने लगें तो पापोंको, मलिन विचारों और मलिन विकारोंको लात मारकर **'परोऽपेहि'** मन्त्र दुहराकर दूर भगा दें। इस साधनामें सबसे बड़ा सम्बल है—प्रभुकी प्रार्थना। आइये, हम प्रभु-चरणोंमें यही निवेदन करें—

पाप वासना कभी भूल यदि मनमें मेरे आ जावे।
परोऽपेहि, तू दूर भाग तू—कह कर मैं दूँ भगा उसे॥

प्यारे कन्हैया

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

प्यारे कन्हैया! तेरी ही पलकोंके इशारेपर मुनिमन-मोहिनी महामाया-नटी थिरक-थिरककर नाच रही है। तेरे ही संकेतसे महान् देव रुद्र अखण्ड ताण्डव-नृत्य करते हैं। तुझे ही रिझानेके लिये हाथमें वीणा लिये सदानन्दी नारद मतवाला नाच नाच रहे हैं। तेरी ही प्रसन्नताके लिये व्यास-वाल्मीकि और शुक-सनकादि घूम-घूमकर और झूम-झूमकर तेरा गुणगान करते हैं। तेरा रूप तो बड़ा ही अनोखा है, जब तेरी वह रूपमाधुरी खुद तुझीको दीवाना बनाये डालती है, तब ज्ञानी-महात्मा, सन्त-साधु और प्रेमी भक्तोंके उसपर लोक-परलोक निछावर कर देनेमें तो आश्चर्य ही क्या है? आनन्दका तो तू अनन्त असीम सागर है, तेरे आनन्दके किसी एक क्षुद्र कणको पाकर ही बड़े-बड़े विद्वान् और तपस्वी लोग अपने जीवनको सार्थक समझते हैं।

अहा! अनिर्वचनीय प्रेमका तो तू अचिन्त्य स्वरूप है। तुझ प्रेम स्वरूपके एक छोटे-से परमाणुने ही संसारके समस्त जननी-हृदयोंमें, समग्र शुद्ध प्रेमी-प्रेमिकाओंके अन्तरमें सम्पूर्ण मित्र-अन्तस्तलोंमें और विश्वके अखिल प्रिय पदार्थोंमें प्रविष्ट होकर जगत्को रसमय बना रखा है। ज्ञानका अनन्त स्रोत तो तेरे उन चरणकमलोंके रजकणोंसे प्रवाहित होता है, इसीसे बड़े-बड़े सन्त-महात्मा तेरी चरणधूलिके लिये तरसते रहते हैं।

किसमें सामर्थ्य है, जो तुझ सर्वथा निर्गुणके अनन्त दिव्य गुणोंकी थाह पावे? ऐसा कौन शक्तिसम्पन्न है, जो तुझ ज्ञानस्वरूप प्रकृतिपर परमात्माके अप्राकृत ज्ञानकी शेष सीमातक पहुँचे? किसमें ऐसी ताकत है, जो तुझ अरूपकी विश्व-विमोहिनी नित्य रूपछटाका सर्वथा साक्षात्कार करके उसका यथार्थ वर्णन कर सके; कौन ऐसा सच्चा प्रेमी है, जो तुझ अपार अलौकिक प्रेमार्णवमें प्रवेशकर उसके अतल तलमें सदाके लिये डूबे बिना रह जाय? फिर बता, तेरा वर्णन—तेरे रूप, गुण, ज्ञान और प्रेमका विवेचन कौन करे और कैसे करे?

प्यारे कृष्ण! बस, तू तू ही है! तेरे लिये जो कुछ कहा जाय, वही थोड़ा है। तेरे रूप, गुण, ज्ञान और प्रेमका दिव्य ध्यान-ज्ञानजनित अनुभव भी तेरी कृपा बिना तुझ देश-काल-कल्पनातीत अकल कल्याण-निधिके वास्तविक स्वरूपके कल्पित चित्रतक भी पहुँचकर उसका सच्चा वर्णन नहीं कर सकता। फिर अनुभवशून्य कोरी कल्पनाओंकी तो कीमत ही क्या है? वस्तुतः तेरे स्वरूप और गुणोंका मनुष्यकृत महान्-से-महान् वर्णन भी यथार्थ तत्त्वको बतलानेवाला न होनेके कारण, महामहिमान्वित चक्रवर्ती सम्राट्को तुच्छ ताल्लुकेदार बतलानेके सदृश एक प्रकारसे तेरा अपमान ही है। परंतु तू दयामय है। तेरे प्रेमी कहा करते हैं कि तू प्यारे दुलारे नन्हे बच्चोंकी हरकतोंपर कभी नाराज न होकर स्नेहवश सदा प्यार करनेवाली जननीकी भाँति, किसी तरह भी अपना चिन्तन या नाम-गुण ग्रहण करनेवाले लोगोंके प्रति प्रसन्न ही होता है। तू उनपर कभी नाराज होता ही नहीं। बस, इसी तेरे विरदके भरोसेपर मैं भी मनमानी कर रहा हूँ। पर भूला! मेरी मनमानी कैसी? नचानेवाला सूत्रधार तो तू है, मैं मनमानी करनेवाला पामर कौन? तू जो उचित समझे, वही कर। तेरी लीलामें आनाकानी कौन कर सकता है; पर मेरे प्यारे साँवलिया! तुझसे एक प्रार्थना जरूर है। कभी-कभी अपनी मोहिनी मुरलीका मीठा सुर सुना दिया कर और जँचे तो कभी अपनी भुवन-मोहिनी सौन्दर्य-सुधाकी दो-एक बूँद पिलानेकी दया भी…।

धर्म अविनाशी तत्त्व है

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

धर्म मानवकी खोज है, उपज नहीं। खोज सदैव अविनाशी तत्त्वकी होती है। इस दृष्टिसे धर्म अविनाशी तत्त्व है। भौतिकवादकी दृष्टिसे धर्म प्राकृतिक विधान, अध्यात्मवादकी दृष्टिसे निज विवेकका प्रकाश तथा श्रद्धापथकी दृष्टिसे प्रभुका मंगलमय विधान है। धर्म धारण किया जाता है अर्थात् धर्मकी धर्मीके साथ एकता होती है। धर्मके धारण करनेसे मानवको भयरहित चिर शान्ति मिलती है। धर्म मानवको रागरहित करनेमें समर्थ है। रागरहित होते ही साधक स्वतः योगवित् तथा तत्त्ववित् एवं प्रेमवित् हो कृतकृत्य हो जाता है। इस कारण धर्म सर्वतोमुखी विकासकी भूमि है।

धर्म सर्वप्रथम मानवको यह प्रेरणा देता है कि विवेक-विरोधी तथा सामर्थ्य-विरोधी कार्य मत करो। सामर्थ्य तथा विवेकके अनुरूप किया हुआ कार्य कर्ताको जन्म-जन्मान्तरके विद्यमान रागसे रहित कर देता है। यह धर्मका बाह्य रूप है। नवीन रागकी उत्पत्ति न हो, इसके लिये धर्म निज अधिकारके त्यागकी प्रेरणा देता है और फिर मानव रागरहित होकर अत्यन्त सुगमतापूर्वक मानव-जीवनके चरम लक्ष्यको प्राप्त कर लेता है।

रागरहित भूमिमें ही योगरूपी वृक्ष लगता है और योगरूपी वृक्षपर ही तत्त्वज्ञानरूपी फल लगता है, जो प्रेमरूपी रससे परिपूर्ण है।

शक्ति, मुक्ति और भक्ति धर्मसे ही उपलब्ध होती है। धर्मात्माके जीवनमें सतत सेवा, त्याग, प्रेमकी त्रिवेणी लहराती है। सेवासे जीवन जगत्के लिये, त्यागसे अपने लिये और प्रेमसे सर्वसमर्थ प्रभुके लिये उपयोगी होता है। धर्मके धारण किये बिना जीवन उपयोगी नहीं होता। अनुपयोगी जीवन किसीको अभीष्ट नहीं है और उपयोगी जीवनकी माँग सदैव सर्वत्र सभीको रहती है।

इस दृष्टिसे धर्मात्मा सभीको स्वभावसे ही प्रिय है। धर्मात्मामें जगत्का चिन्तन नहीं रहता, अपितु जगत् धर्मात्माकी सदैव आवश्यकता अनुभव करता है। कारण कि धर्मात्मासे सभीके अधिकार सुरक्षित रहते हैं और वह स्वयं अधिकार-लालसासे रहित हो जाता है, यह निर्विवाद सत्य है। प्रत्येक मानवमें धर्मका ज्ञान विद्यमान है, पर उसकी खोज वीतराग महापुरुष ही कर पाते हैं। रागरहित होनेकी स्वाधीनता मानवको जन्मजात प्राप्त है। कारण कि उसे उसके रचयिताने विवेकरूपी प्रकाश तथा बुद्धिरूपी दृष्टि एवं भावशक्ति प्रदान की है। धर्म मानवको मिले हुएकी अर्थात् जो प्राप्त है, उसीके सदुपयोगकी प्रेरणा देता है। इस दृष्टिसे धर्मात्मा होनेमें मानव सर्वदा स्वाधीन है। यद्यपि धर्मको धारण करना सहज तथा स्वाभाविक है, फिर भी मानव अपनी ही भूलसे अपनेको धर्मसे च्युत कर लेता है, जो विनाशका मूल है।

अपनी भूलका ज्ञान और उसकी निवृत्ति आवश्यक हो सकती है; पर कब? जब मानव सब ओरसे विमुख होकर अपनी ओर देखे। अपनी ओर देखते ही उसे अपनी रुचि तथा आवश्यकताका बोध होगा। रुचिकी निवृत्ति और आवश्यकताकी पूर्ति अवश्य होती है—यह अविचल सत्य है। रुचिका उद्गम एकमात्र पराधीनताको स्वीकार करना है। पराधीन प्राणी रुचिमें आबद्ध हो जाता है। पराधीनतासे पीड़ित होनेपर जब मानव स्वाधीनताकी आवश्यकता अनुभव करता है, तब अपने-आप रुचिका नाश होने लगता है। सर्वांशमें रुचिका नाश होते ही स्वाधीनताकी माँग अपने-आप पूरी हो जाती है। स्वाधीन मानव ही धर्मके वास्तविक तत्त्वका अनुभव करता है।

पराधीनताको सहन करना ही धर्मसे च्युत होना है। जिसे किसी प्रकारकी पराधीनता सहन नहीं होती, वही जगत्‌के प्रति उदार तथा प्रभुके प्रति प्रेमी होता है। स्वाधीन होनेकी स्वाधीनता मानवको अपने रचयितासे प्राप्त है। पर यह रहस्य तभी स्पष्ट होता है, जब मानव बलका दुरुपयोग तथा विवेकका अनादर नहीं करता और अपने तथा जगत्‌के आधार तथा प्रकाशकमें अविचल श्रद्धा रखता है। सर्वाधार सर्वका प्रकाशक तथा सर्वसमर्थ है; इतना ही नहीं, वह सदैव है, सर्वत्र है और सभीका है। जो उसे स्वीकार नहीं करते, उनका भी वह उतना ही है, जितना उनका है जो उसे स्वीकार करते हैं। पर यह तभी स्पष्ट होता है, जब मानव धर्मको धारणकर रागरहित हो जाय।

निज ज्ञानका आदर मानवको बलके सदुपयोगकी तथा अलौकिक दिव्य चिन्मय अविनाशी जीवनकी प्रेरणा देता है। ज्ञानविरोधी कार्य करते हुए धर्मके तथ्यको जानना सम्भव नहीं है। राग और क्रोधने ही हमें धर्मसे विमुख किया है। दूसरोंके अधिकारकी रक्षा बिना किये रागका नाश नहीं होता और अपने अधिकारका त्याग करनेपर ही मानव क्रोधरहित होता है। 'राग' जड़ता, अभाव तथा नीरसतामें आबद्ध करता है और 'क्रोध' कर्तव्य, निजस्वरूप तथा प्रभुकी विस्मृतिमें हेतु है। अतएव राग तथा क्रोधका अन्त करना अनिवार्य है, जो एकमात्र धर्मके धारण करनेसे ही सम्भव है। कर्तव्यकी स्मृति और उसके पालन करनेकी सामर्थ्य क्रोधरहित होनेपर स्वतः आ जाती है। कर्तव्यनिष्ठ होते ही मानव देहातीत जीवनमें प्रवेश पाता है, जिसके पाते ही जीवन परम प्रेमसे परिपूर्ण हो जाता है। यह विकास धर्मात्माका स्वतः हो जाता है। इस दृष्टिसे धर्मका धारण करना मानवमात्रके लिये अत्यन्त आवश्यक है। धर्मात्मा प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग करके सभी परिस्थितियोंसे अतीत दिव्य चिन्मय जीवनसे अभिन्न होता है। अतः प्राणोंमें रहते हुए ही वर्तमानमें भूलरहित हो धर्मको धारण करनेका अथक प्रयास करना मानवमात्रके लिये परम अनिवार्य है।

की हुई भूल न दोहरानेका, वर्तमान निर्दोषताको सुरक्षित रखने एवं मानवजीवनके चरम लक्ष्यको प्राप्त करनेका दृढ़ संकल्प तथा व्रत स्वीकार करना आवश्यक है। व्रतके पालन करनेमें आयी हुई कठिनाइयोंको हर्षपूर्वक सहन करनेकी प्रेरणा धर्म देता है। कठिनाइयोंके सहन करनेकी आवश्यक शक्तिका प्रादुर्भाव होता है।

अपने लक्ष्यसे कभी निराश नहीं होना चाहिये। कारण कि लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये ही मानव-जीवन मिला है। लक्ष्यसे निराशा तभी आती है, जब मानव प्रमादसे निज विवेकका अनादर तथा बलका दुरुपयोग एवं सर्व-समर्थ प्रभुमें अश्रद्धा करता है। धर्मात्मा कभी निज विवेकका अनादर तथा बलका दुरुपयोग एवं सर्वाधारमें अश्रद्धा नहीं करता। यह सभीको मान्य है कि प्रत्येक उत्पत्तिके मूलमें उत्पत्तिरहित अनादि अविनाशी नित्य तत्त्व अवश्य है। जो अविनाशी है, वही अनन्त है। जो अनन्त है, वही अखण्ड है। उसकी महिमाका कोई वारापार नहीं है; किंतु अपने लक्ष्यकी विस्मृतिसे मानव उसमें अविचल आस्था नहीं कर पाता। भोगकी रुचि, भोगकी माँग, तत्त्वकी जिज्ञासा तथा प्रिय-लालसा (प्रेमकी भूख) मानवको अपनेमें स्वभावसे प्रतीत होती है। भूलरहित होते ही भोगकी रुचिका नाश हो जाता है, जिसके होते ही योगकी उपलब्धि, जिज्ञासाकी पूर्ति एवं प्रेमकी प्राप्ति स्वतः होती है। योगसे शक्ति, बोधसे मुक्ति तथा प्रेमसे अनन्त रसको पाकर मानव अपने चरम लक्ष्यको प्राप्त कर लेता है। अतः लक्ष्यसे निराश होनेके समान और कोई भूल नहीं है। धर्मात्मा सदैव अपनी ओर देखता है और अपने लक्ष्यको अनुभवकर भूलरहित हो सफलता प्राप्त करता है। यह ध्रुव सत्य है।

साधकोंके प्रति—

नामजपकी विलक्षणता

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, व्रत आदि तो क्रियाएँ हैं, पर भगवन्नामका जप क्रिया नहीं है, प्रत्युत पुकार है। जैसे किसीको डाकू मिल जाय और वह लूटने लगे, मारपीट करने लगे तो अपनेमें छूटनेकी शक्ति न देखकर वह रक्षाके लिये पुकारता है तो यह पुकार क्रिया नहीं है। पुकारमें अपनी क्रियाका, अपने बलका भरोसा अथवा अभिमान नहीं होता। इसमें भरोसा उसका होता है, जिसको पुकारा जाता है। अतः पुकारमें अपनी क्रिया मुख्य नहीं है, प्रत्युत भगवान्‌से अपनेपनका सम्बन्ध मुख्य है।

सन्तोंने कहा है—

हरिया बंदीवान ज्यों, करियै कूक पुकार।

जैसे किसीको जबर्दस्ती बाँध दिया जाय तो वह पुकारता है, ऐसे ही भगवान्‌को पुकारा जाय, उनके नामका जप किया जाय तो भगवान्‌के साथ अपनापन प्रकट हो जाता है। इस अपनेपनमें अर्थात् भगवत्सम्बन्धमें जो शक्ति है, वह यज्ञ, दान, तप आदि क्रियाओंमें नहीं है। इसलिये नामजपका विलक्षण प्रभाव होता है।

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

(रा०च०मा० १।२८।१)

किसी भी प्रकारसे नामजप करते-करते यह विलक्षणता प्रकट हो जाती है। परंतु भावपूर्वक, समझपूर्वक नामजप किया जाय तो बहुत जल्दी उद्धार हो जाता है—

सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥

(रा०च०मा० १।११९।२)

तात्पर्य है कि भावपूर्वक, लगनपूर्वक नामजप करनेसे संसारसमुद्र गोपदकी तरह बीचमें ही रह जाता है। उसको तैरकर पार नहीं करना पड़ता, प्रत्युत वह स्वतः पार हो जाता है और भगवान्‌के साथ जो नित्ययोग है, वह प्रकट हो जाता है।

जैसे प्यास लगनेपर जलकी याद आती है तो वह याद भी जलरूप ही है, ऐसे ही परमात्माकी याद भी परमात्माका स्वरूप ही है। जड़ होनेके कारण जल प्यासेको नहीं चाहता, पर भगवान् स्वाभाविक ही जीवको चाहते हैं; क्योंकि अंशीका अपने अंशमें स्वाभाविक प्रेम होता है। कुआँ प्यासेके पास नहीं जाता, प्रत्युत प्यासा कुएँके पास जाता है। परंतु भगवान् स्वयं भक्तके पास आते हैं। वास्तवमें तो भक्त जहाँ परमात्माको याद करता है, वहाँ परमात्मा पहलेसे ही मौजूद हैं! अतः परमात्माको याद करना, उनके नामका जप करना क्रिया नहीं है। क्रिया प्रकृतिका कार्य है, पर नामजप प्रकृतिसे अतीत है। वास्तवमें उपासक (जापक) और उपास्य—दोनों ही प्रकृतिसे अतीत हैं। अतः नामजपसे स्वयं परमात्माके सम्मुख हो जाता है; क्योंकि पुकार स्वयंकी होती है, मन-बुद्धिकी नहीं। इसलिये नामजप गुणातीत है।

सांसारिक अथवा पारमार्थिक कोई भी क्रिया की जाय, वह जड़के द्वारा ही होती है। परंतु लक्ष्य चेतन (परमात्मा) रहनेसे वह जड़ क्रिया भी चेतनकी ओर ले जानेवाली हो जाती है—

कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते॥

(गीता १७।२७)

जहाँ हमारा लक्ष्य होगा, वहीं हम जायँगे। लक्ष्य परमात्मा है तो युद्धरूपी क्रिया भी परमात्मप्राप्तिका कारण हो जायगी। इतना ही नहीं, लक्ष्य चेतन होनेसे जड़ भी चिन्मय हो जायगा। जैसे, ***'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'***—इस प्रकार भगवान्‌का होकर भगवान्‌का भजन करनेसे मीराबाईका जड़ शरीर भी चिन्मय होकर भगवान्‌के श्रीविग्रहमें लीन हो गया! अतः क्रिया भले ही जड़ हो, पर उद्देश्य जड़ (भोग और संग्रह) नहीं होना चाहिये।

शास्त्रोंमें यहाँतक लिखा है कि पापी-से-पापी मनुष्य भी उतने पाप नहीं कर सकता, जितने पापोंका नाश करनेकी शक्ति भगवन्नाममें है! वह शक्ति 'हे मेरे नाथ! हे मेरे प्रभु!' इस पुकारमें है। इसमें शब्द तो बाहरकी वाणीसे, क्रियासे निकलते हैं, पर आह भीतरसे, स्वयंसे निकलती है। भीतरसे जो आवाज निकलती है, उसमें एक ताकत होती है। वह ताकत उसकी होती है,

जिसको वह पुकारता है। जैसे, बच्चा रोता है और माँको पुकारता है तो उसका माँके साथ भीतरसे घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, इसलिये माँ ठहर नहीं सकती, दूसरा काम कर नहीं सकती। इसी तरह सच्चे हृदयसे भगवन्नामका उच्चारण करनेसे भगवान् ठहर नहीं सकते, उनके सब काम छूट जाते हैं। तात्पर्य है कि भगवन्नामके जपमें एक अलौकिक, विलक्षण ताकत है, जिससे जीवका बहुत जल्दी कल्याण हो जाता है। जब दु:शासन द्रौपदीकी चीर खींचने लगा, तब द्रौपदीने '**गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय**' कहकर भगवान्‌को पुकारा। पुकार सुनते ही भगवान् आ गये। पर उनके आनेमें थोड़ी-सी देरी लगी; क्योंकि द्रौपदीने भगवान्‌को '**द्वारकावासिन्**' कहा तो भगवान्‌को द्वारका जाकर आना पड़ा। अगर वह '**द्वारकावासिन्**' नहीं कहती तो थोड़ी-सी देरी भी नहीं लगती, भगवान् तत्काल वहीं प्रकट हो जाते!

एक भगवान् कृष्णका भक्त था और एक भगवान् रामका भक्त था। दोनोंने अपने-अपने इष्टदेवको पुकारा तो भगवान् कृष्ण बहुत जल्दी आ गये, पर भगवान् रामको आनेमें देरी लगी। कारण यह था कि भगवान् राम राजाधिराज हैं। राजाओंकी सवारी आनेमें तो देरी लगती है, पर ग्वालेके आनेमें क्या देरी लगती है? उसको आनेके लिये कोई तैयारी नहीं करनी पड़ती। यह भक्तका भाव है। अयोध्यामें एक सज्जन मिले थे। वे अपने पास एक बालरूप रामका चित्र रखा करते थे। उन्होंने कहा कि मैं तो बालरूप रामजीकी उपासना किया करता हूँ। महाराजाधिराज राजा रामकी उपासना करते हुए मेरेको डर लगता है कि वे राजा ठहरे, कोई कसूर हो जाय तो चट कैदमें डाल देंगे। परंतु बालरूप रामको मैं धमका भी सकता हूँ, थप्पड़ भी लगा सकता हूँ! यह भक्तोंकी भावनाएँ हैं।

अगर मनुष्य नामजपको क्रियारूपसे न लेकर पुकाररूपसे ले तो बहुत जल्दी काम हो जायगा और भगवत्प्रेमकी, भगवत्सम्बन्धकी स्मृति जाग्रत् हो जायगी। संसारकी आसक्तिके कारण भगवत्प्रेम ढक जाता है। भगवान्‌को पुकारनेसे वह प्रेम प्रकट हो जाता है।

'संसार रामकी अयोध्या है'

[स्वामी श्रीरामकृष्ण परमहंसके सदुपदेश]

यह क्या? संसारमें नहीं रहोगे तो जाओगे कहाँ? मैं देखता हूँ, मैं जहाँ रहता हूँ, वह रामकी अयोध्या है। यह संसार रामकी अयोध्या है। श्रीरामचन्द्रजीने ज्ञान प्राप्त करके गुरुसे कहा—'मैं संसारका त्याग करूँगा।' दशरथजीने उन्हें समझानेके लिये वसिष्ठजीको भेजा। वसिष्ठजीने देखा कि श्रीरामको तीव्र वैराग्य हो गया है। उन्होंने कहा कि 'क्या संसार ईश्वरसे अलग वस्तु है? यदि ऐसा ही हो तो इसका त्याग कर सकते हो?' श्रीरामने विचार किया कि 'ईश्वर ही जीव और जगत्—सब कुछ हैं। उन्हींकी सत्तासे सब कुछ सत्य जान पड़ता है।' श्रीराम चुप हो गये।

संसारमें काम-क्रोध—सभीके साथ संघर्ष करना पड़ता है, कितनी ही वासनाओंसे युद्ध करना पड़ता है। आसक्तियोंसे लड़ना पड़ता है। लड़ाई किलेमें रहकर की जाय तो सुविधाएँ रहती हैं। घरमें रहकर ही लड़ना—संघर्ष करना अच्छा है। कलिकालमें प्राण अन्नगत है, अन्नके लिये दस स्थानोंमें मारे-मारे फिरनेकी अपेक्षा एक स्थानपर रहना ही अच्छा है।

संसारमें, आँधीमें उड़ती हुई जूठी पत्तलकी तरह रहो। जूठी पत्तलको आँधी कभी घरके भीतर ले जाती है, कभी नाबदानमें। वायु जिस ओर बहती है, पत्तल भी उसी ओर उड़ती है। तुम्हें ईश्वरने संसारमें रख छोड़ा है। इस समय यहीं रहो। जब वे यहाँसे उठाकर अच्छी जगह ले जायँगे, तब देखा जायगा। संसारमें क्या करोगे? सब कुछ उन्हें अर्पित कर दो। आत्मसमर्पण कर दो। देखोगे, वे ही सब कुछ कर रहे हैं।

(श्रीरामकृष्णवचनामृत, द्वितीय भाग)

दैवी सम्पत्तिकी परम्परा

(पूज्य स्वामी श्रीप्रकाशानन्दजी महाराज)

दैवी सम्पत्तिमेंसे कोई एक ही गुणका यथार्थ पालन किया जाय, तो दूसरे गुण अपने-आप आ जाते हैं। इस सम्बन्धमें एक कथा प्रसिद्ध है, जिसमें सत्यरूपी एक दैवी सम्पत्ति (सद्‌गुण)-का पालन करानेमात्रसे चोरी-जैसे दुष्कर्ममें निरत व्यक्तिका भी लौकिक और पारलौकिक अभ्युदय हो गया। कथा इस प्रकार है—

एक गाँवमें एक महात्मा बाहरसे आये थे। उनके पास बहुत-से लोग जाते और उनका उपदेश श्रवण करते। यह देखकर उनके पास एक आदमी आया और स्वयंको कोई मन्त्र देनेकी प्रार्थना करने लगा। स्वामीजीने पूछा—भाई! तू क्या व्यवसाय करता है? उसने जवाब दिया—मैं चोरीका व्यवसाय करता हूँ। स्वामीजीने कहा—उसके सिवा और कुछ? उसने जवाब दिया—मैं जुआ खेलता हूँ, दारू पीता हूँ और कभी-कभी अनीति भी कर लेता हूँ और बार-बार मुझे झूठ बोलना भी पड़ता है।

स्वामीजीने कहा—ठीक है, इन सबमें कोई एक चीज तो छोड़ सकते हो? उसकी प्रतिज्ञा ले सकते हो? उसने विचार किया—चोरी न करूँ तो भूखा मरूँ, दारूका व्यवसन कभी छूट नहीं सकता; हाँ, झूठ बोलना छोड़ सकता हूँ। उसने स्वामीजीसे कहा कि मैं आजसे कभी झूठ नहीं बोलूँगा। स्वामीजीने कहा—ठीक है। यह कहकर उन्होंने मन्त्र-दीक्षा दे दी।

थोड़े दिनके बाद वह राजाके महलमें चोरी करने गया, वहाँ दीवारमें एक कील मारकर ऊपर चढ़ गया।

गर्मीके दिन थे, ऊपर छज्जेपर राजा घूम रहे थे, उन्होंने पूछा 'भाई? तू कौन है?' उसने कहा—'मैं चोर हूँ। आप कौन हो?' राजाने कहा—'मैं भी चोर हूँ। चल हम दोनों मिलकर राजाका भण्डार लूट लेते हैं। लेकिन तू चोर है, यह एकदम कबूल कैसे कर लेता है? कभी पकड़ा नहीं जायगा?' चोरने झूठ नहीं बोलनेकी गुरुके पास प्रतिज्ञा ली थी, उसने सत्य (हकीकत) बात राजासे कह दी। राजाने उसपर विश्वास किया। बादमें चोरसे राजाने कहा—'मेरे पास चाबी हाथ लगी हुई है, इसलिये हमारा काम आसान हो जायगा।' उसके बाद दोनोंने मिलकर तिजोरीको खोल दिया और सब हीरे-जवाहरात उसमेंसे निकाल लिये। बादमें चोरने चोरीका माल दो भागोंमें बाँट दिया। एक भाग चोर बने राजाको दे दिया और एक भाग स्वयं ले लिया।

एक सोनेकी डिब्बीमें तीन हीरे पड़े थे, वह कैसे बाँटे? वह सोच-विचारमें पड़ गया। राजाने कहा—एक हीरा राजाके लिये छोड़ दें और एक-एक हम दोनों रख लें। चोर सहमत हो गया। उसने वैसा ही किया और तदनन्तर दोनोंने अपना-अपना रास्ता पकड़ा। राजाने चोरका ठिकाना पूछ लिया था एवं स्वयंका झूठा ठिकाना बता दिया था।

दूसरे दिन राजाने दीवानको बुलाकर खजानेमें चोरीकी बात कही और 'क्या-क्या गया है'—उसका पता लगा करके चोरको ढूँढ़नेका हुक्म दिया। दीवानने खजानेकी तलाश की। उसमें एक हीरा मिला। वह स्वयंकी जेबमें डालकर राजाके पास आकर बोला, कुछ भी छोड़ा नहीं है चोरने। सब कुछ ले गया। चोरकी बहुत तलाश की, पर कोई पता नहीं मिल रहा है।

अन्तमें राजाने चोरका ठिकाना बताया और वहाँ रहनेवालेको बुलाकर लानेका हुक्म किया। चोरको हाजिर किया गया। राजाने कहा—दरबारमें चोरी हुई है, तू कुछ जानता है? चोरने कबूल किया—हुजूर, चोरी मैंने ही की है। राजाने पूछा—सब कुछ ले गया या कुछ रहने दिया है? चोर बोला—महाराज, तिजोरीमें तीन हीरे थे। सो हम दो चोर थे, तो हम

दोनोंने एक-एक हीरे बाँट लिये और एक हीरा आपके लिये छोड़ दिया था। राजाने दीवानसे कहा—वह हीरा आपकी जेबमें है, वह निकालो। दीवान घबरा गया और अपनी जेबमेंसे वह हीरा निकालकर दिया। राजाने कहा—आजसे यह चोर दीवान होगा; क्योंकि यह सत्य बोलता है और प्रामाणिक है।

बादमें उस चोरसे राजाने कहा—आपको गुरुने जो सत्य बोलनेकी प्रतिज्ञा करवायी है, उस सत्यके पालन करनेसे ही आप चोरसे दीवान हो पाये हैं। गुरुजीके आपको फिर दर्शन हो जायँ, तो मुझे भी दर्शन करवा देना, जिससे मैं भी उनका सदुपदेश ग्रहण कर सकूँ। यह सुनकर चोरके मनमें विचार आया कि मात्र एक सत्यके पालन करनेसे मैंने दीवान पद प्राप्त किया तो दूसरे दैवी गुणोंको प्राप्त करनेसे मुझे कितना बड़ा लाभ होता? यही समझकर उसने दूसरे भी दैवी सम्पत्तिके गुण धारण करनेके प्रयत्न शुरू किये।

थोड़े दिनके बाद गुरुजी वहाँ आये और दीवानसे मिले। दीवानने गुरुके चरण पकड़कर प्रणाम किया। तब गुरुजीने पूछा—आप कौन हैं? तब दीवानने कहा—कुछ समय पहले आप मेरे गाँवमें पधारे थे और सबको धर्मका उपदेश करते थे एवं धर्मविषयक नीति-नियम और दीक्षा देते थे। तभी मैं भी आपके पास आया था और आपने मुझे धर्मकी दीक्षा ग्रहण करनेको कहा था। तब मैंने आपसे अपना परिचय दिया था कि मैं चोर हूँ। मैं चोरी, जुआ और सब प्रकारके पाप-कर्म करता हूँ। वह सारे छोड़नेके लिये आपने कहा था, परंतु मैंने कहा सारे काम मेरेसे छूटने सम्भव नहीं हैं, केवल सत्य बोलनेकी आज्ञा स्वीकार कर ली। तब आपने मुझे सत्य बोलनेकी प्रतिज्ञा करवायी। उसका पालन मैं करता रहा। उसी सत्यकी महिमासे यहाँके राजाने मुझे प्रामाणिक समझकर दीवान बना दिया है। हालाँकि सत्य बोलनेमें मुझे बहुत आपत्तिका सामना करना पड़ा है। परंतु उसके पालनका उपदेश आपने ही किया था। अतः यह पद और प्रतिष्ठा आपके ही कारण मुझे प्राप्त हुई है। यद्यपि सत्यका पालन करना प्रारम्भमें मुझे बहुत कठिन लगा, परंतु गुरुकी आज्ञा और अपनी प्रतिज्ञा मैं तोड़ नहीं सकता था, अतः अन्तमें मेरी विजय हुई। यह सुनकर गुरु बहुत सन्तुष्ट हुए और प्रसन्न होकर कहने लगे—उपदेश लेने तो मेरे पास बहुत-से लोग आते हैं, परंतु उसका पालन तो तुमने ही किया, अतः फल भी तुम्हें ही प्राप्त हुआ।

उसके बाद उसने राजाको अपने गुरुके दर्शन कराये और राजाकी आज्ञा लेकर वह बोला—मैं अब यह दीवानका पद छोड़कर अपने गुरुकी सेवामें ही रहूँगा। यह सुन राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ! वह कहने लगा कि सांसारिक पदार्थोंको छोड़कर सत्पुरुषोंके संसर्गसे जो त्याग अवस्थाको प्राप्त करते हैं, वे धन्य हैं! राजाने भी उन महापुरुषसे सदुपदेश लेकर स्वयंका राज्य अपने पुत्रको दे दिया। दीवान और राजा उन दोनों सत्पुरुषके साथ जाकर सम्पूर्ण दैवी सम्पत्तिके व्रतके पालनमें निरत हो गये और अन्तमें मोक्षको प्राप्त करके संसारसे हमेशाके लिये निवृत्त हुए। इस तरह अपनेमें एक भी दैवी सम्पत्तिका सद्‌गुण आ जाता है, तो दूसरे सारे अपने-आप आ जाते हैं। **[प्रेषक—श्रीभरतजी दीक्षित]**

जयतु जयतु देवो देवकीनन्दनोऽयं जयतु जयतु कृष्णो वृष्णिवंशप्रदीपः।
जयतु जयतु मेघश्यामलः कोमलाङ्गो जयतु जयतु पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः॥

भगवान् देवकीनन्दनकी जय हो, जय हो। वृष्णिवंशके दीपक कृष्णकी जय हो, जय हो। कोमल अंगोंवाले घनश्यामकी जय हो, जय हो। पृथ्वीके भारका नाश करनेवाले मुकुन्दकी जय हो, जय हो। **[मुकुन्दमाला]**

धर्म, परम्परा और सम्प्रदाय

(डॉ० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

वर्तमान भौतिकवादी युगमें हमारी चिरन्तन-मान्यताओंका अवमूल्यन एवं उनकी उपेक्षा तो हुई ही है, अनेक अभ्यर्हित तथा लोक-समादृत शब्दोंकी भी अत्यन्त दुरवस्थिति संघटित कर दी गयी है। भाषाके साथ ऐसा उत्तरदायित्वहीन व्यवहार कदाचित् पहले कभी नहीं हुआ। वस्तुत: यह सब उन लोगोंका कार्य है, जिन्होंने 'भाषा' और 'जीवन' दोनोंकी परिभाषाएँ तो पढ़ी हैं, किंतु उनके प्रकृति और प्रत्ययोंसे परिचय प्राप्त करना आवश्यक नहीं समझा। आज इन लोगोंद्वारा दी गयी परिभाषाएँ सीखकर हमारी नयी पीढ़ी अपने स्वत्व और महत्त्वको निरूपित करनेवाले इन अनेक पूज्य एवं सार्थक शब्दोंकी अवमानना और विडम्बना कर रही है, परिणामत: उन शब्दोंके शाश्वत अनिवार्य अर्थ भी अब तिरोहित होने लग गये, किसी भी विचारशील भारतीयके लिये इससे अधिक चिन्त्य और कष्टकर परिस्थिति और क्या हो सकती है?

धर्म, परम्परा और सम्प्रदाय—ये तीन शब्द भी आज मंचीय भाषणों, राजनीतिक दुरभिसन्धियों तथा सामूहिक पण्डितम्मन्यताके प्रभावसे अपना मूल अर्थ खोकर कुछ दूसरा ही अर्थ देने लग गये हैं। धर्म, जो एक जीवन-ज्योति है—पुरुष या मनुष्य होनेकी प्रयोजनीयताका प्रथम आधार है, पुरुषार्थ-चतुष्टयका मुख्य अंग है, जिसके द्वारा समाजको धारण किया जाता है, जिसमें समग्र विश्व प्रतिष्ठित है, जो मनुष्यकी भौतिक प्रगति (अभ्युदय) तथा आध्यात्मिक उन्नति (नि:श्रेयस)-का साधन है, जिसने सहस्राब्दियोंसे मानवको ही नहीं, प्राणिमात्रको एक सूत्रमें पिरोया, एक ही परमात्माकी सन्ततिके रूपमें सबको एक ही अन्वय दिया, वह कब, कैसे विग्रहका सूत्रधार बन गया या बना दिया गया? कौन बतलायेगा कि अकस्मात् यह अर्थ-परिवर्तन कैसे हो गया?

आज परम्पराके प्रति हम उदासीन हैं, क्योंकि इस शब्दको सुनकर जो अर्थ समझते हैं, वह हमारी प्रगतिका साधक नहीं बाधक है। अब इस शब्दके पर्यायमें हमें अपनी सनातन मान्यताएँ और नैतिक मूल्य रूढ़िग्रस्त और निरर्थक प्रतीत होते हैं, हमें विदित नहीं कि यह शब्द श्रेष्ठतासे उत्तरोत्तर श्रेष्ठता या प्रगतिका तथा इस जीवन और जगत्‌की सहज गतिका सम्बोधक है अथवा प्राचीनताकी ओरसे नूतनताका अभिनन्दन है।

जिस शब्दके प्रति सर्वाधिक अन्याय हुआ है—वह है 'सम्प्रदाय'। सम्प्रदायका अर्थ है—**सम्—सम्यक्, प्र—प्रकर्षेण, दाय: उत्तराधिकारो दानं वा।**

किसी सिद्धान्तका योग्य व्यक्तिके हाथों, योग्य व्यक्तिद्वारा, योग्यतापूर्वक समर्पण। मान लीजिये, किसी एक बड़े कक्षमें अनेक लोग बैठे हैं। उस समय किसी एक स्थानमें बैठे हुए हमें बिना अपने स्थानसे उठे, कक्षके अन्तिम छोरमें बैठे हुए व्यक्तितक कोई काँचका अत्यन्त बहुमूल्य पात्र या खिलौना पहुँचाना है। ऐसी स्थितिमें दो ही विधियाँ हो सकती हैं—प्रथम, हम उस वस्तुको अपने पासवाले सज्जनको सावधानीसे सम्हला दें—वह उसी विधिसे आगेवाले व्यक्तिको दे और इसी क्रमसे वह अन्तिम जनतक पहुँच जाय। दूसरी, यह कि हम उसे उछालकर फेंकें, ऐसी स्थितिमें वह लक्ष्यतक सुरक्षित पहुँच ही जायगा—यह कहा नहीं जा सकता। उसके बीचमें ही अनीप्सित व्यक्तिके हाथों पड़ जाने या टूट-फूट जानेकी भी प्रबल सम्भावना है। इसीलिये वस्तुको योग्य अधिकारीतक पहुँचानेके लिये प्रथम विधि ही समीचीन कही जा सकती है। यह विधि ही परम्परा है, परम्परा अर्थात् वस्तुको आगे-आगे बढ़ाते जाना और योग्य पात्रको सम्यक् रूपसे सौंप देना। इस दृष्टिसे लौकिक या आध्यात्मिक दोनों ही प्रकारोंके ज्ञान-क्षेत्रोंमें परम्परा और सम्प्रदायका अत्यन्त महत्त्व है। भारतीय मनीषाने गुरु-परम्परा या सम्प्रदायसे प्राप्त ज्ञानको ही पूर्ण तथा श्लाघ्य माना है। जो ज्ञान इतस्तत: छितराया हुआ मिल जाता है, वह पूर्ण नहीं हो सकता तथा उसकी प्रामाणिकता भी सन्दिग्ध ही रहती है, इसीलिये वह जारजन्मा पुत्रकी भाँति अप्रतिष्ठित ही रहता है—

पुस्तकप्रत्ययाधीतं नाधीतं गुरुसन्निधौ।
भ्राजते न सभामध्ये जारगर्भ इव स्त्रिया:॥

वास्तु, शिल्प, संगीत आदि लौकिक कलाओंमें भी स्पष्टतया सम्प्रदायकी अपनी महत्ता एवं वैशिष्ट्य है, इसलिये सम्प्रदाय एक आदरणीय एवं गौरवास्पद शब्द है। लौकिक और आध्यात्मिक दोनों ही विद्याएँ सम्प्रदायरहित होकर हितकारिणी नहीं हो सकतीं। अतएव आज मूल्योंके संक्रमण-कालमें इन शब्दोंका वास्तविक अर्थबोध प्रतिष्ठित करना अब हमारा महत्त्वपूर्ण तथा अनिवार्य कर्तव्य है।

'अशान्तस्य कुतः सुखम्'

(डॉ० श्रीबसन्तबल्लभजी भट्ट)

सुख किंवा शान्ति एक ऐसी अवस्थाविशेष है, जिसे ब्राह्मी स्थिति कहा गया है। यही शाश्वत सुखकी स्थिति है। जो परम सुख है, परम विश्राम है, वही शाश्वत शान्ति है। यह वह अवस्था है, जिसे प्राप्तकर फिर वहाँसे लौटना नहीं होता, भवबन्धन सदाके लिये छूट जाता है—'**एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।**' (गीता २।७२)। यह स्वरूपावस्था है, सच्चिदानन्दमयी अवस्था है, साम्यावस्था है और तादात्म्यकी स्थिति है।

तन्मात्राओंका स्पर्शजन्य सुख नश्वर है। इन्द्रियजन्य भोग सुख क्षणिक है, उसका परिणाम दुःख है। वह परम आनन्दकी स्थिति नहीं है, ऐसेमें कैसे शान्तिकी स्थिति बन सकती है! स्थायी सुख-शान्तिकी प्राप्ति तो '**विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः। निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥**' (गीता २।७१)-के अनुपालनमें ही है। इसका भाव है, मनमें कोई इच्छा, कामना, अभिलाषा न हो, कोई चाह न हो, कोई लिप्सा न हो, किसी वस्तु-व्यक्ति-परिस्थितिमें ममता न हो और स्वयं अहंतासे शून्य हो, इस प्रकारकी स्थितिमें रहकर जगत्-व्यवहारकी क्रिया साधनावस्थासे ऊपर उठकर आनन्दमय सिद्धावस्था है, जो जलमें कमलपत्रके समान निर्लेपताकी स्थिति है।

साधनाजगत्में वृत्तियोंकी उपरामता ही शान्तिकी स्थिति है, यह सहजावस्था है। मन जब समस्त हलचलोंसे शून्य हो जाय, शरीर स्पन्दरहित हो जाय, कोई गति न हो, कोई क्रिया न हो, चित्त निर्वात दीपशिखाकी भाँति अचल हो जाय, इन्द्रियाँ विषयोंकी लिप्सामें घृणाका भाव रखकर उपरत हो जायँ तो समझना चाहिये कि वृत्तिने तादात्म्यको प्राप्त कर लिया है। यही शान्तिकी स्थिति है, यही परम निर्वाण है और यही परम आनन्दकी अनुभूति है।

इसकी उपलब्धि कैसे हो, यही मानवमनका विचारणीय विषय है। जो पुरुष इस कल्याणमार्गके पथिक बन गये हैं, उन्हींको शाश्वत शान्तिकी, उन्हींको परम सुखकी प्राप्ति होती है, अन्य किसी दूसरेको नहीं—**तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्, तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।** गीतामें ऐसे ही पुरुषको 'स्थितप्रज्ञ' कहा गया है। इस मार्गका स्वल्प भी अनुपालन महान् श्रेयको प्राप्त कराता है और भवबन्धनरूप संसारके भयसे मुक्त करता है—'**स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।**'

परम शान्तिकी स्थिति प्राप्त करनेके लिये हमें अपने मनको आत्मानुकूल बनाकर निश्चिन्त होना होगा। यह ध्यानमें रखना चाहिये कि इन्द्रियाँ कभी भी भोगोंसे तृप्त एवं शान्त होनेवाली नहीं हैं। अचिन्त होना, अचाह होना ही शहनशाह होना है—'***चाह गयी चिन्ता गयी मनवाँ बेपरवाह, जिसको कछू न चाहिये सो साहनके साह।***' परमसुख प्राप्त करनेके लिये हमें अपनेको व्यष्टिके कल्याणसे ऊपर उठाकर समष्टिके—समग्रके हित-चिन्तनसे जोड़ना होगा। स्वल्पसे उठकर विराट् बनना होगा। अल्पसे उठकर महान् बनना होगा। संकीर्णतासे उठकर उदार आशयवाला बनना होगा; क्योंकि स्वल्पमें सुख नहीं है, सुख तो भूमा (विराट्)-में है—'**भूमा वै सुखं नाल्पे सुखमस्ति।**' स्वकल्याणसे ऊपर उठकर समस्त विश्वके कल्याणकी बात सोचनी होगी, हमको सभी प्राणियोंके प्रति द्वेषभावसे मुक्त होना होगा, सभी भूतप्राणियोंका मित्र बनना होगा—'**अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्**', '**सुहृदं सर्वभूतानाम्।**' मानवता और चराचर जीवजगत्के प्रति आत्मीय भाव रखना सुख-शान्ति है। परोपकारमें परम सुखानुभूति है। दूसरेके हित-चिन्तनमें परम शान्ति है। अहिंसामें, जीवदयामें, विश्वबन्धुत्वकी भावनामें, सबके प्रति सद्भावना रखनेमें, भलाईका भाव रखनेमें सच्ची सुख-शान्ति है।

हमारा संकल्प शुभ हो। **तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।** हम सब मिलकर काम करें। हमारे विचार एक समान हों। हमारा बुद्धिका निर्णय ठीक हो। हम अपनी

मर्यादाओंका पालन करें और कठिन परिस्थितियोंमें भी अपने कर्तव्य-पथसे डिगें नहीं। अपने सदाचारसे विमुख न हों, अपना आचार-विचार और आहार-विहार विधि-नियन्त्रित रखें। दूसरा विपरीत आचरण भी करे, तब भी हम उसका भला ही सोचें—ये सब शान्ति-मार्गके सोपान हैं, सुखकी सीढ़ियाँ हैं। इनमेंसे हमें एक-एक करके सीढ़ी चढ़ते हुए ऊपर जानेकी जरूरत नहीं है, बल्कि हम किसी एक ही सीढ़ीमें भी दृढ़तापूर्वक खड़े रहें, अडिग रहकर स्थित रहें तो अवश्य ही मंजिलको प्राप्त कर लेंगे, लक्ष्य स्वयं ही संधाताके पास चला आयेगा। हमें सच्ची सुख-शान्तिकी प्राप्ति हो जायगी।

सुख और दुःख यद्यपि द्वन्द्वात्मक स्थिति है। अतः हमें उस द्वन्द्वसे ऊपर उठना होगा। दिव्य सुख और आनन्दको प्राप्त करना होगा। समस्त शास्त्रोंका यही मत है और सभीका अनुभव भी यही है कि शाश्वत सुख और शाश्वत शान्तिकी प्राप्ति भगवान्‌की ओर उन्मुख होनेमें है, सात्त्विक भावोंको अपनानेमें है। भगवान्‌को न भूलना ही परम सुख है—'**अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः।**' और भगवान्‌का विस्मरण ही परम दुःख है—**विपद् विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायण-स्मृतिः।** इन्द्रियोंको तृप्त करनेकी अभिलाषा दुःख है। कामनाओंके भोगमें दुःख है। कामनाओंके त्यागमें, विषयोंसे उपरत होनेमें सुख है, शान्ति है। रागमें दुःख है और अनुराग—प्रेममें सुख है। मनोराज्यमें रमण करना, उसमें सुख समझना दुःख है और आत्माभिरमणमें परम सुख है, परम शान्ति है। जितने भी सात्त्विकभाव हैं, उनके अनुपालनमें शान्ति है और उनके परित्यागमें महान् दुःख, कष्ट और अकल्याण है। इन्द्रियसंयोगजन्य तथाकथित सुखोंमें सर्वथा अनासक्ति और आत्मरतिमें सर्वथा आसक्ति रखनेसे अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है। जो कामक्रोधादि वेगोंको सहन करनेका सामर्थ्य रखता है, वही यथार्थसुखी है, आत्मतृप्त है और परम शान्त है।

हमें आध्यात्मिक सुख-शान्ति प्राप्त हो, आधिदैविक सुख-शान्ति प्राप्त हो और आधिभौतिक सुख-शान्ति प्राप्त हो, इसके लिये आवश्यक है कि हम शास्त्राभ्यास और अध्यात्म ज्ञान एवं ब्रह्मविद्याके द्वारा आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त करें। देवाराधन एवं नाम-जपादिके द्वारा आधिदैविक शान्ति प्राप्त करें और आधिभौतिक शान्तिके लिये स्वयं सच्चे अर्थोंमें मानव बनें और मानवमात्रके प्रति संवेदना रखें। इसके साथ ही प्रकृति एवं पर्यावरणके प्रति संवेदनशील बने रहें। प्रकृतिके मनमाने और निरंकुश दोहनका ही परिणाम है कि आज सर्वत्र विश्वमें ईति-भीतिका महान् संकट उपस्थित है। मानवने समग्र प्रकृतिको भी उद्वेलित एवं क्षुब्ध बना डाला है। आज अतिवृष्टि, अनावृष्टि, असमयवृष्टि, अकाल, भू-स्खलन, बाढ़ एवं असाध्य रोगों और विनाशकारी युद्धकी विभीषिका आदि सामान्य-सी बात हो गयी है। पर्यावरणका प्रदूषण और जलवायुकी असमानताने विश्वके बौद्धिक जगत्‌को अत्यन्त भयभीत बना रखा है। यह सब हमारे ही प्रयत्नोंका परिणाम है। अतः हमें बहुत सावधान और सजग रहनेकी आवश्यकता है, तभी हम आधिभौतिक शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।

आजसे कुछ समय पूर्वकी बात है, तब लोग प्रायः अमन-चैनमें थे। घर-घर सुख-शान्तिका माहौल था। तब इतनी हाय-हाय नहीं थी, इतनी आपाधापी, इतनी मारा-मारी नहीं थी, लोगोंकी आवश्यकताएँ कम थीं, किंतु आज तृष्णाके प्रकोपने सब नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है। '**यदृच्छालाभसन्तुष्टः**'-की अवधारणा आज न्यून होती जा रही है। यह सन्तुष्टि विकासकी गतिको अवरुद्ध करना नहीं, अपितु जीवका वास्तविक विकास है, आध्यात्मिक विकास है, आध्यात्मिक शान्ति है।

आज घर-घर अशान्ति है, दुःख है। दाम्पत्यकी विफलता तो आम बात बन गयी है। समूचा विश्व युद्ध एवं अशान्तिकी ज्वालामें धधक रहा है। सर्वत्र मानसिक तनाव है। भय, आशंका एवं चिन्ताका वातावरण है। विस्तारवादी नीतियोंके कारण मर्यादाओंका अतिक्रमण हो रहा है, यह समूची मानवताके लिये संकट एवं

विनाशकी प्रतिध्वनि है। मानव, मानवताके मूल्योंको नकारनेमें गौरवकी अनुभूति कर रहा है। ऐसेमें कैसे शान्ति स्थापित हो सकती है। जो स्वयं अशान्त है, वह दूसरेको कैसे शान्त कर सकता है। अशान्तको सुख कहाँसे हो सकता है—'**अशान्तस्य कुतः सुखम्।**' (गीता २।६६)

हम किस प्रकार शाश्वत सुख प्राप्त कर सकते हैं, कैसे हम चिन्तामुक्त हो सकते हैं, कैसे तनावमुक्त हो सकते हैं, कैसे अपने दुःखोंसे उबर सकते हैं, सच्चा सुख क्या है, सच्ची शान्ति किसमें है, संसारमें रहकर हम कैसे अपना कल्याण कर सकते हैं, कौन-से ऐसे उपाय हैं, जिनसे हमें सुख-शान्ति प्राप्त हो सकती है, कैसे हम अमन-चैनसे जीवन जी सकते हैं, संसाधनोंकी अधिकाधिक होड़ क्या हमें सुख दिला सकती है, अचाह बना सकती है, क्या इससे हम अपने लक्ष्यको प्राप्त कर सकते हैं, हम सच्ची मानवताको कैसे प्राप्त कर सकते हैं, कैसे समस्त विश्वमें शान्ति और कल्याणकी स्थापना हो सकती है, कैसे प्रेम और सौहार्दका भाव स्थापित हो सकता है, परस्पर सद्भावनाका कैसे उदय हो सकता है तथा कैसे हम एक-दूसरेके सच्चे मित्र और सच्चे हितैषी बन सकते हैं—इसके लिये आवश्यक है कि हम अपने अन्तर्मनसे इन प्रश्नोंको पूछें और जो उत्तर और समाधान हमें मिले, उसपर हम सच्चाई तथा ईमानदारीसे दृढ़तापूर्वक अमल करें तो निश्चित ही हमें सुख-शान्तिकी राह प्राप्त हो सकती है और लक्ष्यपर जानेका हमारा पथ भी सुलभ हो जायगा। उस पथपर निर्बाध रूपसे अप्रतिहत गतिसे अग्रसर होनेके लिये हमें सर्वशक्तिमान् कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ परमात्म प्रभुकी शरण ग्रहण करनी पड़ेगी, उनकी कृपाका अवलम्बन लेना होगा, तभी हमारा पुरुषार्थ भी सफल होगा। यही सच्चे सुख और शान्तिका मंगलमय मार्ग है—**नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।**

बोध-कथा—

निन्दासे शत्रुताका जन्म होता है

बौद्ध जातकावलिके अनुसार पूर्वकल्पमें किसी देशके मनुष्योंने एक विद्वान् सौभाग्यशाली और सर्वांग-सुन्दर पुरुषको अपना राजा बनाया। पशुओंने भी एकत्र होकर सर्व-सम्मतिसे एक सिंहको अपना राजा बनाया। इसके बाद पक्षीगण भी हिमालयप्रदेशमें स्थित एक शिलाखण्डपर एकत्रित हुए और परस्पर चर्चा की कि मनुष्यों और पशुओंने अपने-अपने लिये राजाका चयन कर लिया है, परंतु हमारा कोई राजा नहीं है, अतः हमें भी किसीको अपना राजा बनाना चाहिये, क्योंकि बिना राजाके रहना उचित नहीं।

इसके अनन्तर उन सबने परस्पर एक-दूसरेकी ओर देखते हुए एक उल्लूको देखकर कहा—'यह हमको अच्छा लगता है।' तब एक पक्षीने सबके मध्य इस आशयकी राय ग्रहण करनेके लिये तीन बार अपनी बात रखी। तभी उन पक्षियोंके मध्य बैठे एक कौएने उठकर कहा—'जब राज्याभिषेकके समय इसका इस प्रकारका उद्वेगजनक मुख है, तो क्रुद्ध होनेपर कैसा होगा! इसके क्रुद्ध होकर देखनेपर तो हम सब तप्त कड़ाहमें पड़े तिलोंकी भाँति भुन जायँगे। ऐसा राजा मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।'

इस प्रकार कहकर वह पुनः कहने लगा—

'मुझे इस उलूकका राज्याभिषेक कल्याणकारी नहीं लग रहा है।'

तदनन्तर वह कौआ 'मुझे अच्छा नहीं लगता', 'मुझे अच्छा नहीं लगता'—इस प्रकार बार-बार कहकर आकाशमें उड़ गया। तब उलूक भी उठकर क्रोधपूर्वक उसके पीछे दौड़ा। इधर पक्षीगण तो स्वर्णहंसको अपना राजा बनाकर अपने-अपने निवास-स्थानको चले गये, किंतु तबसे लेकर आजतक वे दोनों एक-दूसरेके शत्रु बने हुए हैं। इस प्रकार सभामें की गयी निन्दाने कौए और उलूकको चिर शत्रु बना दिया।

रामकथाओंमें लोकविश्वास

(श्रीसुधीरजी निगम)

हमारे समाजमें प्रचलित कुछ मान्यताओं, परम्पराओं, विश्वासोंका भले ही कोई वैज्ञानिक आधार समझमें न आता हो, परंतु संस्कृतिकी वे थाती अवश्य होते हैं। साहित्य, विशेषकर काव्यमें इनके प्रयोगसे रचनाका रूप निखरता है, अर्थको स्पष्टता मिलती है और कृति लोकप्रिय होती है। ऐसे लोकविश्वासोंका गोस्वामी तुलसीदासने अपने 'रामचरितमानस'में और महाकवि वाल्मीकिने अपनी 'रामायण'में प्रयोग किया है।

लोकमान्यता है कि अपने बच्चोंको माता-पिताकी भी दीठ (नजर) लग जाती है। इससे बचनेका उपाय बड़ा साधारण-सा है। राम-भरत, लक्ष्मण-शत्रुघ्नकी श्याम और गौर शरीरवाली दो सुन्दर जोड़ियाँ राजा दशरथके आँगनमें खेल रही हैं। माताएँ हर्ष-विभोर हो उन्हें देख रही हैं। तभी उन्हें भय लगता है कि इन जोड़ियोंको कहीं हमारी ही नजर न लग जाय। अत: उन्हें देखते-देखते वे तृण (तिनका) तोड़ने लगती हैं, जिससे उनकी दीठ न लगे।

स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी। निरखहिं छबि जननी तृन तोरी॥

नजर लगनेकी आशंका माताओंतक सीमित नहीं रहती। प्रत्येक सद्भावी जन सौन्दर्यके दर्शनकर यही आशंका करता है कि कहीं उसकी ही नजर न लग जाय। दूल्हा जब सजता है तो उसकी छटा अनुपम होती है और फिर श्रीराम-जैसा दूल्हा हो तो छटा अद्भुत ही होगी। वे कुलदेवता (कोहबर)-के स्थानपर जानेके लिये सजे हैं—विभिन्न मणियोंसे अलंकृत मौर उनके शीशपर शोभायमान हैं, उनके वस्त्राभूषण और वे स्वयं इतने आकर्षक हैं कि बरबस चित्त चुराये ले रहे हैं। नगरकी स्त्रियाँ और देवबालाएँ उन्हें देखती हैं और यह सोचकर तिनके तोड़ने लगती हैं कि कहीं दूल्हेको उनकी ही नजर न लग जाय।

गाथे महामनि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं।
पुर नारि सुर सुंदरीं बरहि बिलोकि सब तिन तोरहीं॥

किसी विशेष अवसरपर, विशेष स्थितिमें शरीरके अंगोंका फड़कना शुभ और अशुभ दोनों माना जाता है। स्त्रीका बायाँ अंग और पुरुषका दाहिना अंग फड़कना शुभ माना जाता है। राम-लक्ष्मण जनकपुरीमें हैं। धनुष-यज्ञ होनेवाला है। वे वाटिकामें पुष्प चुनने गये हैं। सखियोंके साथ गौरी पूजाको आयी सीताके प्रथम दर्शन रामको होते हैं। उस अलौकिक सौन्दर्यको देखकर उनका स्वभावसे पवित्र मन चंचल हो उठता है। वे लक्ष्मणसे कहते हैं कि वे नहीं जानते कि ऐसा क्यों हो रहा है, परंतु उनका मंगलदायक (दाहिना) अंग फड़कने लगा है।

फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता॥

सीता भी रामकी शोभा देखकर प्रेमके वशीभूत हो जाती हैं। वे गौरी-पूजाके लिये आयी थीं। गौरीने सीताकी भावना समझकर उन्हें वरदान दे दिया कि वही सुन्दर साँवला वर उन्हें प्राप्त होगा। यह वरदान पाकर सीताको हर्ष हुआ और उनके बायें अंग फड़कने लगे—

जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि।
मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे॥

पशु-पक्षी तथा अन्य प्राणी भी शुभ-अशुभके द्योतक माने जाते हैं। 'रामचरितमानस' में वर्णित है कि पशु-पक्षी किस स्थितिमें शुभ होते हैं। नीलकण्ठ नामक पक्षीका तो दर्शन ही शुभ माना जाता है और यदि वह बायीं ओर दाना चुग रहा हो, तो अत्यन्त मंगलकारी होता है।

चारा चाषु बाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मंगल कहि देई॥

कौवा प्रकृतिसे बुरा माना जाता है, परंतु साफ-सुथरे खेतमें दायीं ओर बैठे होनेपर शुभ माना जाता है (***दाहिन काग सुखेत सुहावा***)। वही कौआ गन्दे स्थानपर बैठा हुआ बोलता सुनायी दे तो अशुभ माना जाता है। (***रटहिं कुभाँति कुखेत करारा***) सफेद सिरवाली चील (खेमकरी) किसी भी स्थिति या दशामें दिखायी देनेपर शुभ मानी जाती है ***'छेमकरी कह छेम बिसेषी'*** किंतु श्यामा नामक पक्षीका दर्शन उसी दशामें शुभ होता है, जब वह किसी हरे-भरे वृक्षपर बैठी हो

'स्यामा बाम सुतरु पर देखी'।

नेवला, अशुभ माने जानेवाला साँपका शत्रु होनेके कारण सर्वत्र और सर्वसमय शुभ माना जाता है *'नकुल दरसु सब काहूँ पावा'*। लोमड़ी बार-बार दिखायी दे *'लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा'* हरिणोंकी टोलियाँ बायीं ओरसे घूमकर दाहिनी ओर आयें *'मृगमाला फिरि दाहिनि आई'* और गायें सामने खड़ी बछड़ोंको दूध पिलाती मिलें। *'सुरभी सनमुख सिसुहि पिआवा'* तो मंगल-ही-मंगल होता है। दही, मछली देखना शुभ माना जाता है *'सनमुख आयउ दधि अरु मीना'*। देहातों, कस्बोंमें आज भी स्त्रियाँ, पुत्र या पतिके कहीं बाहर जानेपर दही-मछली शब्दोंका उच्चारण करती हैं।

भोजन हमारे शरीरके लिये हितकारी हो, इस हेतु शास्त्रीय विधान है कि '**प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा** और **समानाय स्वाहा**' नामक पाँच मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए पहले पाँच ग्रास लेना चाहिये। राजा जनकके यहाँ भोजन करने बैठे सब लोग ऐसा ही करते हैं *'पंच कवल करि जेवन लागे'*। माना जाता है कि इस प्रक्रियासे भोजन मंगलकारी होता है।

किसी बातपर बल देनेके लिये और उसका महत्त्व समझानेके लिये कहा जाता था कि 'मैं रेखा खींचकर यह बात कह रहा हूँ।' मन्थरा, कैकेईको समझा रही है कि रामके राजा बन जानेपर उसे तिरस्कृत करके महलसे निकाल दिया जायगा, अत: वह रामके अभिषेकमें बाधा डाले।

रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी॥

किसी कार्यके लिये प्रस्थान करते समय किसीका छींक देना लोकमें आज भी अशुभ माना जाता है। तुलसीदासजी बताते हैं कि यदि छींक बायीं ओर हो तो शुभ शकुन होता है। सेनासहित भरत रामको मनाने जा रहे हैं। मार्गमें गुहका राज्य पड़ा। निषादराजने सोचा कि भरत रामपर आक्रमण करने जा रहे हैं, अत: उनका प्रतिरोध करनेके लिये उसने अपनी सेना एकत्र कर ली। तभी किसीने छींक दिया। सगुनियाने कहा कि छींक बायीं ओर होनेसे शुभ है, अत: मित्रता होगी—

एतना कहत छींक भइ बाँए। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाए॥

महर्षि वाल्मीकिने भी रामायणमें लोकविश्वासका प्रश्रय लिया है। राम अयोध्याके राजमहलसे वन जानेके लिये निकल पड़ते हैं। उनके प्रेमके वशीभूत होकर राजा दशरथ भी पुरवासियोंके साथ उनके पीछे चलने लगते हैं। राजाके मन्त्री जानते हैं कि वे यदि अधिक दूरतक रामके साथ चले गये तो उन्हें लौटा पानेमें कठिनाई होगी। राजाका शरीर वैसे ही पसीनेसे भीगा हुआ था और वे विषादकी मूर्ति लग रहे थे। मन्त्री समझते थे कि इस समय कोई मन्त्रणा, कोई उपदेश काम नहीं करेगा। अत: लोकविश्वासका प्रश्रय लेते हुए वे कहते हैं—'राजन्! जिसके लिये यह इच्छा की जाय कि वह पुन: शीघ्र लौट आये, उसके पीछे दूरतक नहीं जाना चाहिये।'

यमिच्छेत् पुनरायातं नैनं दूरमनुव्रजेत्।

(वा०रा० २।४०।५०)

किसीको विदा करते समय उसके अंग स्पर्श करके उसके प्रति मूक सद्भावना, सदिच्छा और सम्मान प्रकट किया जाता है। सुमन्त्र रामको अयोध्याकी सीमातक ले आये। राम चाहते हैं कि सुमन्त्र अब लौट जायँ और आगेकी यात्रा वे पैदल चलकर करें। तब दशरथनन्दन श्रीरामने सुमन्त्रको उत्तम दाहिने हाथसे स्पर्श करते हुए कहा कि वे शीघ्र महाराजके पास लौट जायँ।

ततोऽब्रवीद् दाशरथिः सुमन्त्रं स्पृशन् करेणोत्तमदक्षिणेन।

(वा०रा० २।५२।१३)

दु:खके कारण दारुण क्षणोंमें आदमी आँसू गिराता है, मनस्तापके कारण कातर भावसे भू-लुण्ठित हो जाता है, परंतु ऐसी स्थितिमें, लोकाचारके कारण, वह अपना मुँह ढँकना नहीं भूलता। भरत ननिहालसे आकर मृत पिताको देखते हैं तो रोते हुए पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं, परंतु ऐसे दु:खद क्षणोंमें भी वे अपने मुखको वस्त्रसे ढाँकना नहीं भूलते।

बाष्पमुत्सृज्य कण्ठेन स्वात्मना परिपीडितः।
प्रच्छाद्य वदनं श्रीमद् वस्त्रेण जयतां वरः॥

(वा०रा० २।७२।२१)

आज भी लोग भोजन पहले ईश्वरको अर्पित करते हैं, फिर स्वयं ग्रहण करते हैं। परंतु रामायणकालमें लोक-

विश्वास था कि खीर, खिचड़ी और बकरीका दूध देवताओं, पितरों और भगवान्‌को निवेदित किये बिना नहीं ग्रहण करना चाहिये। यदि किसीको कोसना होता तो कहा जाता था कि वह खीर, खिचड़ी और बकरीका दूध निवेदित किये बिना ही ग्रहण कर ले। भरत माता कौसल्याको स्पष्टीकरण देते हैं कि रामको वन भेजनेमें उनकी कोई सहमति नहीं है। वे कोसते हैं—'जिसकी सलाहसे आर्य श्रीरामचन्द्र वनमें गये हों, वह निर्दय मनुष्य खीर, खिचड़ी और बकरीके दूधको देवताओं, पितरों एवं भगवान्‌को निवेदित किये बिना ही व्यर्थ करके खाय।'

पायसं कृसरं छागं वृथा सोऽश्नातु निर्घृणः।

(वा०रा० २।७५।३०)

यदि कोई किसीकी बुराई करता है तो उसे राहपर लानेका अहिंसक उपाय था उसके समक्ष धरना देना। भरतके अनुनय-विनयके पश्चात् श्रीराम अयोध्या लौटनेके लिये दृढ़तासे इनकार कर देते हैं। भरत रामसे कहते हैं कि 'जैसे महाजनद्वारा निर्धन किया हुआ ब्राह्मण उसके घरके दरवाजेपर बिना खाये-पिये पड़ा रहता है, वैसे ही मैं भी मुँह ढँककर आपकी कुटियाके समक्ष लेट जाऊँगा।' इसपर राम पूछते हैं कि उन्होंने उनकी क्या बुराई की है, जो वे उनके सामने धरना देंगे?

पूर्वाभिभाषी मधुरः सत्यवादी महाबलः।

(वा०रा० २।४८।३०)

इन लोकविश्वासोंको अन्धविश्वास कहकर नकारा जा सकता है, परंतु इनके भीतर आत्मानुशासन, आत्मसम्मान, परदु:खकातरता, परहितभावकी जो एक अव्यक्त अन्तर्धारा प्रवाहित होती है, उसके कारण लोकविश्वास हमारे सांस्कृतिक जीवनकी एक धरोहर बन जाते हैं।

धर्म व्यावहारिक है

(ब्रह्मलीन परम पूज्य स्वामी श्रीसत्यमित्रानन्द गिरिजी महाराज)

सामान्य धारणा यह है कि धर्मका इस जीवनसे कोई सम्बन्ध नहीं है, पर विचार करनेपर लगता है, यह सत्य नहीं है। ***'धारणाद्धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः'*** अतः मनुष्यके दैनिक जीवनसे, उसकी दिनचर्यासे, धर्मको सम्बद्ध होना चाहिये। न केवल औपचारिक दिनचर्यासे, अपितु मानवके संस्कारोंके उदात्तीकरणके लिये धर्म साधनके रूपमें प्रतिष्ठित हो, यह अपने पूर्व-पुरुषोंकी कल्पना रही है। धर्मकी व्यवहारिकताका परिचय अहंशून्य समर्पणमें ही है। वह समर्पण समाजके प्रति प्रारम्भ होता है और उसका पर्यवसान परम तत्त्वके प्रति होता है, इसलिये मानव-देह पाकर पीड़ित मानवताकी सेवा नारायण समझकर करना चाहिये। सेवा करनेमें किसीके प्रति दया, सहानुभूति दिखाकर कोई बड़ा कार्य कर रहे हैं, यह भाव भी नहीं आना चाहिये। यदि ऐसा हुआ हो तो सात्त्विक अहंकारके बन्धनसे जीव और बँध जायगा। एक बन्धनको छोड़कर नये-नये बन्धनोंका निर्माण मानवको मूल उद्देश्यसे दूर हटाता है। मानव-जीवनके मूल उद्देश्यसे भटक जानेपर न जाने कौन-सी योनियोंमें जन्म लेना पड़े—***'सूकरं योनिं वा कुक्कुरं योनि।'*** सूकर और कुत्तेकी घृणित योनिमें जन्म लेना पड़ सकता है, जिसमें मानवोचित कर्मका बोध ही नहीं रहता। अहंकारके खूँटेसे कामनाकी रस्सी बँधी है। अपने जीवनकी सार्थकताके लिये दृष्टिका निर्माण करना आवश्यक है।

एक शल्य-चिकित्सक शरीरकी गहराईमें धँसे शल्यको निकालकर पीड़ाको दूर कर देता है। सन्त भी शल्य-चिकित्सककी तरह है। शल्य-चिकित्सक तो अपने उपकरणके माध्यमसे स्थूल शरीरमेंसे विकृत पदार्थ या पीड़ाकारक वस्तुको निकालता है। सन्त ऐसा शल्य-चिकित्सक है, जो अपनी वाणीसे, चिन्तनसे, तप:पूत दृष्टिसे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक पीड़ाको पूर्णरूपेण ठीक कर देता है। आप सब भी सन्तोंकी वाणीसे, दृष्टिसे, अपनेको पवित्र बनानेका संकल्प करें। अपनी दृष्टिको तप:पूत बनायें। यदि दृष्टि निर्मल है, तो सामनेके गर्तसे भी बचकर निकला जा सकता है। दृष्टिपर किसी प्रकारका आवरण आ गया, तो गर्तमें गिरना निश्चित है

और उससे निकलना भी नितान्त असम्भव है।

हमारा धर्म केवल मोक्षकी बात नहीं करता। वह हमारे व्यावहारिक जीवनका मार्ग प्रशस्त करता है, इसलिये सही दृष्टिसे समझकर किया गया छोटा-सा कर्म भी पूजा बन सकता है। गीताका वचन इस बातको प्रमाणित करता है—

'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः'

अपने-अपने कर्मसे प्रभुकी अर्चनाकर मनुष्य सिद्धि प्राप्त कर सकता है, इसलिये किसीको अपने कर्म छोड़नेकी आवश्यकता नहीं, अपितु उस कर्मको समर्पणभावसे, प्रभुकी सेवा समझकर करना है। आपको कई अवसर ऐसे भी मिल सकते हैं। कई महात्मा, सिद्ध मिल सकते हैं, जो सिद्धियोंका चमत्कार दिखलाते हैं। सिद्धियोंके चमत्कारमें न पड़ें। अपने कर्मको ही प्रमुख मानकर उसमें तन्मय हो जायँ। आपके अन्तःकरणमें परितोष भर उठेगा, आपके परिवारमें कर्मके पुष्पकी सुगन्ध बिखर जायगी। जिसको जो कार्य मिला, वही उसकी पूजा है। सदैव ऐसा प्रयास करें, ऐसा कार्य करें, जिससे चित्त प्रसन्न रहे। परिवारमें मोदका वातावरण हो। कार्य ही पूजाका स्थान ले ले, तभी निर्मलता आयेगी। सम्भव है, आपके मनमें यह विचार जगे कि जो उच्चासनपर बैठकर दूसरोंको उपदेश देता है, वह श्रेष्ठ है और जो जमीनपर बैठता है, साफ-सफाई करता है, खेतोंमें परिश्रम करता है, वह छोटा है, नीच है। यदि ऐसा भाव आपके मनमें जगा, तो आप अपने-आपको धार्मिक व्यक्ति नहीं मान सकते; क्योंकि सभी परमात्माके पुत्र हैं, उसने प्रत्येकके लिये अलग-अलग कार्य सौंपा है। कार्य पूरा होनेपर जब उस परमपिताके पास दोनों ही प्रकारके कार्य करनेवाले व्यक्ति पहुँचते हैं, तो पिताकी गोदमें दोनों ही स्थान पाते हैं। वस्तुतः झाड़ू लगानेवाला और प्रवचन करनेवाला—दोनों ही अपने कर्मद्वारा परमात्मप्रभुकी पूजा ही करते हैं। काम अलग-अलग हैं प्रयोजनवश, परंतु आध्यात्मिक दृष्टिसे दोनों एक ही हैं।

आध्यात्मिक दृष्टिसे साधु और कर्मयोगी एक ही स्थानको प्राप्त होते हैं। इस दृष्टिसे भी कोई ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा नहीं है। सामाजिक व्यवस्थाकी दृष्टिसे भी यह अत्यन्त आवश्यक है। आध्यात्मिक व्यक्तिके लिये किसीसे घृणा नहीं, किसीसे वैर नहीं। ऐसे ही व्यक्तिकी ओर मानसकारने इंगित किया है—

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

जो सर्वत्र अपने प्रभुको देखता है, उसके लिये संसारमें किसीके प्रति शत्रुभाव, घृणाका भाव नहीं होता। उसे सर्वत्र अपने रामके, अपने प्रभुके, अपनी ही आत्माके दर्शन होते हैं। वैर या हीनताके भावका प्रश्न ही नहीं उठता।

यह सबको भलीभाँति विदित ही है कि जब तुलसीदासजी बाँके बिहारीजीके मन्दिरमें जाते हैं, तो श्यामसुन्दरको प्रणाम नहीं करते, बल्कि अपनी उदार दृष्टिसे उनमें रामका दर्शन करते हुए कह देते हैं—

कहा कहौं छवि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवे, धनुष-बान लेउ हाथ॥

यह थी तुलसीकी उदार और समन्वित दृष्टि और इष्टके प्रति अनन्यता। वे तो यहाँतक कह देते हैं कि—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

सम्पूर्ण संसार उनके लिये सीताराममय है, भेददृष्टि उनमें नहीं रह गयी। इसी प्रकारकी अभेद दृष्टि चित्तको निर्मल बना देती है। चित्त निर्मल होनेसे, दृष्टि निर्मल हो जाती है। निर्मल दृष्टिसे निर्मल व्यवहारका मार्ग प्रशस्त हो जाता है। निर्मलताके इस संकल्पको आप सब अपने मनमें ले जायँ।

वर्तमान जीवनमें यदि सबसे बड़ा संकट है तो नैतिकताका संकट है। देशमें किसी भी वस्तुकी कमी हो, तो बाहरसे आयात करके उसकी पूर्ति की जा सकती है। युद्ध हो, तो रेडक्रॉस सोसायटी औषधियाँ भेजती है। अकाल पड़े, तो अन्नका आयात होता है, परंतु नैतिकताका अकाल पड़े, तो कहाँसे आयात किया जायगा? उसे तो अपने भीतर ही जगाना होगा। यह जागरण ही धर्मका व्यावहारिक पक्ष है। उसके लिये निरन्तर गतिशील और सजग होकर प्रयत्न करना होगा।

[प्रस्तुति—श्रीमती गरिमा श्रीवास्तव]

महारानी अहिल्याबाई होल्करकी तीर्थसेवा

(डॉ० श्रीराधेमोहनप्रसादजी)

इन्दौरकी महारानी अहिल्याबाई होल्कर भारतीय इतिहासकी एक अनमोल रत्न थीं, जो एक उज्ज्वल नक्षत्रकी तरह भारतके ऐतिहासिक, राजनैतिक एवं धार्मिक आकाशमें वर्षोंतक चमकती रहीं। वे गंगा-जमुनाकी तरह पवित्र थीं और सीता-सावित्रीकी तरह पूज्य। इनकी गिनती भारतकी उन ऐतिहासिक नारियोंमें की जाती है, जिन्होंने प्रजापर नहीं, बल्कि उनके हृदयपर एक महान् माताके समान ममतामयी होकर शासन किया। अहिल्याबाई इतिहासमें अद्वितीय स्थान रखनेवाली एक आदर्श महिला साबित हुईं। अपनी निष्काम कर्तव्यपरायणता, अपूर्व धार्मिकता, प्रजावत्सलता तथा सतत साधनाके चलते वे सभीके लिये आदरकी पात्र हमेशा बनी रहीं। इनके जीवनमें एकसे बढ़कर एक संकट आते गये, जिनका उन्होंने धैर्य एवं बहादुरीके साथ सामना किया। उनका जीवन सतत संघर्षका था, पर अपनी प्रजाके प्रति दायित्वोंसे तनिक भी विमुख नहीं हुईं। उज्ज्वल चरित्र, पतिव्रता नारी, वात्सल्यमयी माँ, महान् विजयिनी, राष्ट्रनिर्मात्री, कुशल शासिका, राजनीतिज्ञ, धर्मसहिष्णु, महान् शिवभक्त यानी जितने भी गुण एक महान् शासकके व्यक्तित्वके लिये होना जरूरी है, उन सबका समन्वितरूप अहिल्याबाई होल्करमें था।

महारानी अहिल्याबाईका जन्म महाराष्ट्रके औरंगाबाद शहरके समीप चौड़ी नामक गाँवमें १७२५ ई०में हुआ था। इनके माता-पिताद्वारा दिये गये संस्कार इनपर इतने प्रभावी हुए कि वे ही इनके लोकोत्तर जीवनका आधार बन गये। इनका विवाह १७३३ ई०में मल्हारराव होल्करके पुत्र खण्डेरावके साथ हुआ। समयके साथ-साथ श्वशुर, पति, पुत्र, पुत्री, नाती, दामाद सभी आत्मीय स्वजन एक-एककर इनका सांसारिक साथ छोड़कर परलोक सिधार गये। इनकी जिन्दगीमें प्रारम्भसे ही दु:खोंका पहाड़ टूटा, पर वे अपने कर्तव्यसे जरा-सा भी विचलित नहीं हुईं। महारानी अहिल्याबाई भारतमें उस समय अवतरित हुई थीं, जब यहाँकी राजनैतिक स्थिति डाँवाँडोल थी। अंग्रेज और फ्रांसीसी शक्तियाँ भारतकी दुरवस्थाका लाभ उठाकर अपना-अपना वर्चस्व स्थापित करनेके लिये प्रयासरत थीं। ऐसे ही उथल-पुथल और अन्धकारमय वातावरणमें लोकमाता अहिल्याबाई एक उज्ज्वल नक्षत्रकी तरह इस भारतभूमिमें अवतरित हुईं। इनका व्यक्तित्व हिमालयकी तरह उत्तुंग और अतुलनीय था। बहुआयामी व्यक्तित्व होनेके साथ-साथ इनमें जितने सद्गुण थे, शायद ही किसी एक व्यक्तिमें देखनेको मिलते हैं। अलौकिक तेजके कारण वे साक्षात् देवीस्वरूपा दिखायी देती थीं। अन्याय, अत्याचार तथा पापसे उन्हें घृणा थी। कवि मोरोपन्तने इनकी दानशीलता तथा न्यायप्रियताको देखकर उस समय कहा था—

देवी अहिल्याबाई, झालीस जय त्रयान्त तू धन्या।
न न्याय धर्मनिरता अथा कलिया जी एक की कथा॥

यानि देवी अहिल्याबाई तुम तीनों लोकोंमें धन्य हो। कलियुगमें तुम्हारी-जैसी न्यायी और धर्मपरायणा अन्य नारी कहीं देखी-सुनी नहीं गयी। लोकमाता अहिल्याबाईने देशभरके अधिकांश तीर्थों, चारों धामों, बारह ज्योतिर्लिंगों और अनेक मन्दिरोंके पुनरुद्धार करवाये, अन्न-क्षेत्र प्रारम्भ करवाया, धर्मशालाएँ बनवायीं, नदियोंपर बाँध बँधवाये, वृक्षारोपण कराया, बावलियाँ बनवायीं। लोग उन्हें इसलिये पूजते थे; क्योंकि उन्होंने अपने-आपको एक ऐसे उदाहरणके रूपमें स्थापित किया, जिनका जो कुछ भी था, वह लोकके लिये था। उन्होंने अपनी निजताको समग्रताके लिये न्योछावर कर दिया था। उनके निजस्वकी धारा समग्रताके सागरमें विलीन हो गयी थी, इसलिये वे सरिता नहीं रहीं, समुद्र हो गयीं। उन्होंने महेश्वर-जैसे छोटेसे गाँवको अपनी राजधानी बनाकर वहाँसे पूरे चालीस वर्षोंतक धार्मिक और न्यायिक रीति-नीतिसे न केवल पूरे मालवापर शासन किया, बल्कि बदरिकाश्रमसे रामेश्वरम् और द्वारकासे भुवनेश्वरतकके मन्दिरोंका पुनर्निर्माण कराया। उन्होंने जहाँ एक ओर गयामें विशाल विष्णुपद मन्दिरका निर्माण कराया, वहीं दूसरी ओर काशीमें नर्मदाके शिवलिंग नर्मदेश्वरकी विश्वनाथके रूपमें स्थापना की। माता अहिल्याबाईने सरयू, नर्मदा, गंगा और गोदावरीके तटोंपर घाटोंका निर्माण करवाया। अयोध्यासे नैमावर-तकके मन्दिरोंमें पूजा-व्यवस्था करायी तथा सात बड़े नगरोंमें अन्न-क्षेत्रोंकी स्थापना की। देवी अहिल्याबाई परम शिवभक्त थीं तथा उनकी राजाज्ञाओंपर 'श्रीशंकर आज्ञा' लिखा रहता था। उनका मत था कि 'सत्ता मेरी नहीं, सम्पत्ति भी मेरी नहीं, जो कुछ है भगवान्का है और उसके प्रतिनिधिस्वरूप

समाजका है। इस तरह उन्होंने समाजको भगवान्‌का प्रतिनिधि माना और उसीको अपनी समूची सम्पत्ति सौंप दी। वे अपने समयमें इतनी श्रद्धास्पद बनीं कि समाजने उन्हें अवतार मान लिया। देवीका यह चरित्र केवल उनके व्यक्तित्वके ख्यालसे नहीं, बल्कि देशकी शासिकाके नाते समस्त मानवजातिके लिये अनुकरणीय है।

धन्य है! अखिल ब्रह्माण्डनायक भगवान् विष्णुका चरण! धन्य है विष्णुपद मन्दिर और धन्य हैं लोकमाता अहिल्याबाई! लाखों श्रद्धालु प्रतिवर्ष गयाजी आते हैं और अहिल्याबाईकी कीर्ति देखकर श्रद्धासे नतमस्तक हो जाते हैं।

अपने जीवनकालमें अहिल्याबाईने मन्दिरोंमें परम धार्मिक और विद्वान् ब्राह्मणोंकी नियुक्ति की थी। काशी, प्रयागराज, लखनऊ, हरिद्वार आदि स्थानोंमें उन्होंने महाराष्ट्रके अनेक परिवारोंको तथा उत्तरप्रदेशके कई परिवारोंको मालवा एवं महाराष्ट्रमें बसाया था। देशके विभिन्न क्षेत्रोंके शिल्पी, कवि, मूर्तिकार तथा अन्य लोग भी मन्दिर, सराय आदि बनानेके लिये सुदूर क्षेत्रोंमें लोकमाताका संरक्षण पाकर बस गये। आज हम गयामें भी कुशल तथा दक्ष शिल्पकार महारानी अहिल्याबाईकी स्मृतिको अपनेमें विरासतके रूपमें रखे हुए हैं। महारानी अहिल्याबाईके द्वारा निर्मित किये गये धार्मिक स्थलोंको निम्नांकित रूपमें देखा जा सकता है। आर्य संस्कृतिके मुख्य स्मारक सप्तपुरी, चार धाम और बारह ज्योतिर्लिंग हैं। इनमेंसे प्रत्येक स्थानपर लोकमाता अहिल्याबाईद्वारा की गयी सेवाको देखनेका अवसर मिलता है—

सप्तपुरी	**सेवा**
अयोध्या	श्रीराम-मन्दिर और अन्य
मथुरा	धर्मशाला
हरिद्वार	धर्मशाला
काशी	काशी विश्वनाथ-मन्दिरका जीर्णोद्धार
कांची (कांचिवरम्)	धर्मशाला
उज्जैन	श्रीचिन्तामणि गणपति
द्वारिका	पूजा-अर्चनहेतु कई गाँव खरीदकर उसकी आय

चारधाम	**सेवा**
बदरीनाथ	धर्मशाला, अनेक कुण्ड, श्रीहरिका मन्दिर
द्वारकाधीश	पूजन-अर्चनके लिये गाँव
रामेश्वरम्	धर्मशाला
जगन्नाथपुरी	कुछ गाँव

बारह ज्योतिर्लिंग	**सेवा**
सौराष्ट्र	मन्दिरका जीर्णोद्धार तथा प्राण-प्रतिष्ठा
मल्लिकार्जुन	शिवमन्दिर
महाकालेश्वर	पूजा-पाठहेतु गाँव-दान
ओंकारेश्वर	मन्दिर
परलीमें वैद्यनाथ	जीर्णोद्धार
भीमाशंकर	जीर्णोद्धार
रामेश्वरम्	कुण्डका निर्माण
नागेश्वर	पूजन
विश्वेश्वर	जीर्णोद्धार, विश्वनाथ मन्दिर
त्र्यंबकेश्वर	तीर्थपुरोहितके लिये बंधान
केदारनाथ	कुण्ड
बेरूलमें घृष्णेश्वर	जीर्णोद्धार

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित स्थानोंपर तीर्थक्षेत्र तथा देवस्थानका निर्माण करवाया, जिनमेंसे कुछ प्रमुख हैं—

गयाजी	भव्य विष्णुपद मन्दिरका निर्माण
कुरुक्षेत्र	घाट
प्रयागराज	घाट
श्रीनैमिषारण्य	श्रीभगवान् शंकरकी महिमा
पुष्कर	नोहरा (वाडा)
अमरकंटक	धर्मशाला
नासिक	श्रीअहिल्या मन्दिर
संगमनेर	श्रीराम मन्दिर
श्रीक्षेत्र पंढरपुर	श्रीराम मन्दिर
चौड़ी	श्रीमहादेव मन्दिर
चित्रकूट	श्रीराम पंचायतकी स्थापना

महाराष्ट्रके बाहर भी पूरे भारतमें मन्दिरों, घाटोंकी व्यवस्था, वृक्षारोपण, कुएँ और नदियोंका निर्माण, पशु-पक्षियोंके खानेके लिये व्यवस्था, धर्मशालाएँ तथा दूसरे-दूसरे क्षेत्रकी सफलतासे आज भी अहिल्याबाईका नाम सारे भारतमें अत्यन्त ही सम्माननीय दृष्टिसे लिया जाता है। उन्हें लोकमाताका गौरव प्राप्त है।

सन्त-चरित—

श्रीकुलशेखर आळवार

कोल्लिनगर (केरल)-के राजा दृढ़व्रत बड़े धर्मात्मा थे, किंतु उनके कोई सन्तान न थी। उन्होंने पुत्रके लिये तप किया और भगवान् नारायणकी कृपासे द्वादशीके दिन पुनर्वसु नक्षत्रमें उनके घर एक तेजस्वी बालकने जन्म लिया। बालकका नाम कुलशेखर रखा गया। ये भगवान्‌की कौस्तुभमणिका अवतार माने जाते हैं। राजाने कुलशेखरको विद्या, ज्ञान और भक्तिके वातावरणमें संवर्धित किया। कुछ ही दिनोंमें कुलशेखर तमिल और संस्कृत भाषामें पारंगत हो गये और इन दोनों प्राचीन भाषाओंके सभी धार्मिक ग्रन्थोंका उन्होंने आलोडन कर डाला। उन्होंने वेद-वेदान्तका अध्ययन किया और चौंसठ कलाओंका ज्ञान प्राप्त किया। यही नहीं, ये राजनीति, युद्धविद्या, धनुर्वेद, आयुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा नृत्यकलामें भी प्रवीण हो गये। जब राजाने देखा कि कुलशेखर सब प्रकारसे राज्यका भार उठानेमें समर्थ हो गया है, तब कुलशेखरको राज्य देकर वे स्वयं मोक्षमार्गमें लग गये। कुलशेखरने अपने देशमें रामराज्यकी पुनः स्थापना की। प्रत्येक गृहस्थको अपने-अपने वर्ण और आश्रमके अनुसार शिक्षा देनेका समुचित प्रबन्ध किया। उन्होंने व्यवसायों तथा उद्योग-धन्धोंको सुव्यवस्थित रूप देकर प्रजाके दारिद्र्यको दूर किया। अपने राज्यको धन, ज्ञान और सन्तोषकी दृष्टिसे एक प्रकारसे स्वर्ग ही बना दिया। यद्यपि वे हाथमें राजदण्ड धारण करते थे, पर उनके हृदयने भगवान् विष्णुके चरण-कमलोंको दृढ़तापूर्वक पकड़ रखा था। उनका शरीर यद्यपि सिंहासनपर बैठता था, पर उनका हृदय भगवान् श्रीरामका सिंहासन बन गया था। राजा होनेपर भी उनकी विषयोंमें तनिक भी प्रीति नहीं थी। वे सदा यही सोचा करते 'वह दिन कब होगा, जब ये नेत्र भगवान्‌के त्रिभुवनसुन्दर मंगलविग्रहका दर्शन पाकर कृतार्थ होंगे? मेरा मस्तक भगवान् श्रीरंगनाथके चरणोंके सामने कब झुकेगा? मेरा हृदय भगवान् पुण्डरीकाक्षके मुखारविन्दको देखकर कब द्रवित होगा, जिनकी इन्द्रादि देवता सदा स्तुति करते रहते हैं? ये नेत्र किस कामके हैं, यदि इन्हें भगवान् श्रीरंगनाथ और उनके भक्तोंके दर्शन नहीं प्राप्त होते? मुझे उन प्यारे भक्तोंकी चरण-धूलि कब प्राप्त होगी? वास्तवमें 'बुद्धिमान् वे ही हैं, जो भगवान् नारायणके पीछे पागल हुए घूमते हैं, और जो उनके चरणोंको भुलाकर संसारके विषयोंमें फँसे रहते हैं, वे ही 'पागल' हैं।'

भक्तकी सच्ची पुकार भगवान् अवश्य सुनते हैं। एक दिन रात्रिके समय भगवान् नारायण अपने दिव्य विग्रहमें भक्त कुलशेखरके सामने प्रकट हुए। कुलशेखर उनका दर्शन प्राप्तकर शरीरकी सुध-बुध भूल गये, उसी समयसे उनका एक प्रकारसे कायापलट ही हो गया। वे सदा भगवद्भावमें लीन रहने लगे। भगवद्भक्तिके रसके सामने राज्यसुख उन्हें फीका लगने लगा। वे अपने मनमें सोचने लगे—'मुझे इन संसारी लोगोंसे क्या काम है, जो इस मिथ्या प्रपंचको सत्य माने बैठे हैं। मुझे तो भगवान् विष्णुके प्रेममें डूब जाना चाहिये। ये संसारी जीव कामदेवके बाणोंके शिकार होकर नाना प्रकारके भोगोंके पीछे भटकते रहते हैं। मुझे केवल भक्तोंका ही संग करना चाहिये। सांसारिक भोगोंकी तो बात ही क्या, स्वर्गका सुख भी मेरे लिये तुच्छ है।' ऐसा निश्चय करके वे अपना सारा समय सत्संग, कीर्तन, भजन, ध्यान और भगवान्‌के अलौकिक चरित्रोंके श्रवणमें ही व्यतीत करने लगे। उनके इष्टदेव श्रीराम थे और वे दास्यभावसे उनकी उपासना करते थे।

एक दिन वे बड़े प्रेमके साथ श्रीरामायणकी कथा सुन रहे थे। प्रसंग यह था कि भगवान् श्रीराम सीताजीकी रक्षाके लिये लक्ष्मणको नियुक्तकर स्वयं अकेले खर-दूषणकी विपुल सेनासे युद्ध करनेके लिये उनके सामने जा रहे हैं। पण्डितजी कह रहे थे—

चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।
एकश्च रामो धर्मात्मा कथं युद्धो भविष्यति॥

अर्थात् धर्मात्मा श्रीराम अकेले चौदह हजार राक्षसोंसे युद्ध करने जा रहे हैं, इस युद्धका परिणाम क्या होगा?

कुलशेखर कथा सुननेमें इतने तन्मय हो रहे थे कि उन्हें यह बात भूल गयी कि यहाँ रामायणकी कथा हो रही है। उन्होंने समझा कि 'भगवान् वास्तवमें खर-दूषणकी सेनाके साथ अकेले युद्ध करने जा रहे हैं।' यह बात उन्हें कैसे सह्य होती, वे तुरन्त कथामेंसे उठ खड़े हुए। उन्होंने उसी समय शंख बजाकर अपनी सारी सेना एकत्र कर ली और सेनानायकको आज्ञा दी कि 'चलो, हमलोग श्रीरामकी सहायताके लिये राक्षसोंसे युद्ध करने चलें।' ज्यों ही वे

वहाँसे जानेके लिये तैयार हुए, तभी उन्होंने पण्डितजीके मुँहसे सुना कि 'श्रीरामने अकेले ही खर-दूषणसहित सारी राक्षससेनाका संहार कर दिया।' तब कुलशेखरको शान्ति मिली और उन्होंने सेनाको लौट जानेका आदेश दिया।

भक्तिका मार्ग भी बाधाओंसे शून्य नहीं है। मन्त्रियों और दरबारियोंने जब यह देखा कि महाराज राजकाजको भुलाकर रात-दिन भक्तिरसमें डूबे रहते हैं और उनके महलोंमें चौबीसों घण्टे भक्तोंका जमाव रहता है, तब उन्हें यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने सोचा—'कोई ऐसा उपाय रचना चाहिये, जिससे राजाका इन भक्तोंकी ओरसे मन फिर जाय।' परंतु यह कब सम्भव था? एक दिनकी बात है, राज्यके रत्नभण्डारसे एक बहुमूल्य हीरा गुम हो गया। दरबारियोंने कहा—'हो-न-हो, यह काम उन भक्तनामधारी धूर्तोंका ही है।' राजाने कहा—'ऐसा कभी हो नहीं सकता।' मैं इस बातको प्रमाणित कर सकता हूँ कि 'वैष्णव भक्त इस प्रकारका आचरण कभी नहीं कर सकते।' उन्होंने उसी समय अपने नौकरोंसे कहकर एक बर्तनमें बन्द कराकर एक विषधर सर्प मँगवाया और कहा—'जिस किसीको हमारे वैष्णव भक्तोंके प्रति सन्देह हो, वह इस बर्तनमें हाथ डाले, यदि उसका अभियोग सत्य होगा तो साँप उसे काट नहीं सकेगा।' उन्होंने यह भी कहा—'मेरी दृष्टिमें वैष्णव भक्त बिलकुल निरपराध हैं। किन्तु यदि वे अपराधी हैं तो सबसे पहले इस बर्तनमें मैं हाथ डालता हूँ। यदि ये लोग दोषी नहीं हैं, तो साँप मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।' यों कहकर उन्होंने अपना हाथ झट उस बर्तनके अन्दर डाल दिया और लोगोंने आश्चर्यके साथ देखा कि साँप अपने स्थानसे हिला भी नहीं, वह मन्त्रमुग्धकी भाँति ज्यों-का-त्यों बैठा रहा। दरबारीलोग इस बातपर बड़े लज्जित हुए और अन्तमें वह हीरा भी मिल गया। इधर कुलशेखर तीर्थयात्राके लिये निकल पड़े और अपनी भक्तमण्डलीके साथ भजन-कीर्तन करते हुए भिन्न-भिन्न तीर्थोंमें घूमने लगे।

वे कई वर्षोंतक श्रीरंगक्षेत्रमें रहे। उन्होंने वहाँ रहकर 'मुकुन्दमाला' नामक संस्कृतका एक बहुत सुन्दर स्तोत्र-ग्रन्थ रचा, जिसका संस्कृत जाननेवाले अब भी बड़ा आदर करते हैं। इसके बाद ये तिरुपतिमें रहने लगे और वहाँ रहकर इन्होंने बड़े सुन्दर भक्तिरससे भरे हुए पदोंकी रचना की। उनके कुछ पदोंका भाव नीचे दिया जाता है। वे कहते हैं—

'मुझे न धन चाहिये, न शरीरका सुख चाहिये; न मुझे राज्यकी कामना है, न मैं इन्द्रका पद चाहता हूँ और न मुझे सार्वभौमपद चाहिये। मेरी तो केवल यही अभिलाषा है कि मैं तुम्हारे मन्दिरकी एक सीढ़ी बनकर रहूँ, जिससे तुम्हारे भक्तोंके चरण बार-बार मेरे मस्तकपर पड़ें। अथवा प्रभो! जिस रास्तेसे भक्तलोग तुम्हारे श्रीविग्रहका दर्शन करनेके लिये प्रतिदिन जाया करते हैं, उस मार्गका मुझे एक छोटा-सा रज:कण ही बना दो, अथवा जिस नालीसे तुम्हारे बगीचेके वृक्षोंकी सिंचाई होती है, उस नालीका जल ही बना दो अथवा अपने बगीचेका एक चम्पाका पेड़ ही बना दो, जिससे मैं अपने फूलोंके द्वारा तुम्हारी नित्य पूजा कर सकूँ, अथवा मुझे अपने यहाँके सरोवरका एक छोटा-सा जलजन्तु ही बना दो।'

इन्होंने मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या आदि कई उत्तरके तीर्थोंकी भी यात्रा की थी और श्रीकृष्ण तथा श्रीरामकी लीलाओंपर भी कई पद रचे थे। इनके सबसे उत्तम पद अनन्य शरणागतिपरक हैं, जिनमेंसे कुछका भाव नीचे दिया जाता है।

वे कहते हैं—

'यदि माता खीझकर बच्चेको अपनी गोदसे उतार भी देती है, तो भी बच्चा उसीमें अपनी लौ लगाये रहता है और उसीको याद करके रोता-चिल्लाता और छटपटाता है। उसी प्रकार हे नाथ! तुम चाहे मेरी कितनी ही उपेक्षा करो और मेरे दु:खोंकी ओर ध्यान न दो, तो भी मैं तुम्हारे चरणोंको छोड़कर और कहीं नहीं जा सकता, तुम्हारे चरणोंके सिवा मेरे लिये कोई दूसरी गति ही नहीं है। यदि पति अपनी पतिव्रता स्त्रीका सबके सामने तिरस्कार भी करे, तो भी वह उसका परित्याग नहीं कर सकती। इसी प्रकार चाहे तुम मुझे कितना ही दुतकारो, मैं तुम्हारे अभय चरणोंको छोड़कर अन्यत्र कहीं जानेकी बात भी नहीं सोच सकता। तुम चाहे मेरी ओर आँख उठाकर भी न देखो, मुझे तो केवल तुम्हारा और तुम्हारी कृपाका ही अवलम्बन है। मेरी अभिलाषाके एकमात्र विषय तुम्हीं हो। जो तुम्हें चाहता है, उसे त्रिभुवनकी सम्पत्तिसे कोई मतलब नहीं।'

कर्म और निष्काम कर्म

(श्री गो०दा० फेगड़ेजी)

'यत् क्रियते तत् कर्म' अर्थात् जो किया जाता है, उसे कर्म कहते हैं, जन्मसे लेकर मृत्युतक मनुष्य (जीव) एक क्षण भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता; क्षुधा-पिपासा, मल-मूत्र, शीत-उष्ण, निद्रा-भय—ये अष्टस्वभाव उसे कर्म करनेको बाध्य करते हैं। श्वासोच्छ्वास भी एक कर्म ही है, कर्म किये बिना वह अपना और अपने परिवारका भरण-पोषण भी नहीं कर सकता।

मनुष्य कायिक, वाचिक और मानसिक माध्यमोंसे जो शुभ-अशुभ या पाप-पुण्यरूप कर्म करता रहता है, वे सब उसे भोगने पड़ते हैं, जो कर्मफल भोगे जाते हैं, उन्हें क्रियमाण कर्म कहा जाता है, लेकिन कर्मफल एक ही समय भोगे नहीं जाते, जो बचते हैं, उन्हें संचित कर्म कहा जाता है, संचित कर्म भोगनेको हजारों जन्म भी लग सकते हैं, संचित कर्मोंके लेप (संस्कार) हर जन्ममें जीवके साथ-साथ जाते रहते हैं, जैसे—

यथा धेनुसहस्त्रेषु वत्सो गच्छति मातरम्।
तथा यच्च कृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति॥

जिस तरह हजारों गौओंमेंसे बछड़ा अपनी माताके साथ ही जाता है, उसी तरह मनुष्यके किये हुए कर्मोंके फल उसके (जीवके) साथ ही जाते रहते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥

(गीता १५।८)

जिस तरह वायु अपने साथ गन्धको ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही देहका स्वामी जीवात्मा अपने कर्मफलोंको मनसहित ग्रहण करके दूसरे देहमें प्रवेश करता है।

संचित कर्म परिपक्व होनेपर उसका प्रारब्ध कर्ममें रूपान्तर होता है। प्रारब्ध कर्म बन्धनकारक होते हैं, बिना भोगे उनका क्षय नहीं होता, जैसे राजा दशरथने गलतीसे बालक श्रवणकी हत्या की थी, उसका फल उन्हें पुत्रविरहके रूपमें भोगना पड़ा। धृतराष्ट्र पूर्व जन्ममें पारधी था, उस जन्ममें उसने पक्षियोंको जलाकर मारा था, कुछ अन्धे भी हुए थे, उनके बच्चे भी आगमें जलकर मरे थे, उसके फलस्वरूप वह अगले एक जन्ममें अन्धा बना और उसके सौ पुत्रोंकी हत्या हुई थी।

क्रिया और प्रतिक्रिया यह प्रकृतिका नियम है, शुभ कर्मोंके शुभ फल मिलते हैं, अशुभ कर्मोंके अशुभ फल मिलते हैं, मनुष्य जैसा करता है, वैसा भरता है। ईश्वर न तो अच्छे फल देता है, न बुरे फल देता है। परमेश्वर समद्रष्टा है, वह केवल साक्षी है। भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते॥

(गीता ५।१४)

परमेश्वर प्राणियोंके न कर्तापनको, न कर्मोंको तथा न कर्मफलके संयोगको रचता है, दूसरे एक श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥

(गीता ५।१५)

परमेश्वर न तो किसीको पाप देता है, न पुण्य अर्थात् वह पाप-पुण्यसे अलिप्त है, किंतु मायाके द्वारा त्रिगुणोंसे ज्ञान ढँका है, अज्ञानतासे लोग (जीव) मोहित होते हैं, जीवका स्वभाव कर्म करना है तथा देवताओंका स्वभाव उसके कर्मका फल प्रदान करना है (विचारसूत्र २११), सन्त कबीर कहते हैं—

जैसी करनी जासु की, तैसी भुगते सोय।

अविद्याजनित मतिभय (अधोमति, अधोगति, अधोरति)-के कारण मनुष्य (जीव) अज्ञानवश शुभ कर्मोंकी अपेक्षा अशुभ कर्म अधिक करता है। तथापि उसकी प्रवृत्ति अच्छे फल पानेकी होती है। जैसे—

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति मानवाः।
न पापफलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः॥

लोग पुण्य न करते हुए भी पुण्य पानेकी इच्छा

करते हैं, पाप तो करते हैं, किंतु उसके फल नहीं चाहते। सन्त कबीरके शब्दोंमें—

करे बुराई सुख चहै, कैसे पावे कोय।
रोपै पेड़ बबूलका, आम कहा से होय॥

'परोपकार पुण्य, परपीडा पाप', 'जैसा करोगे, वैसा भरोगे' आदि कहावतें यथार्थ हैं।

जबतक जीव अपने कर्मोंका नाश नहीं कर लेता अथवा संचित कर्मोंके फल पूर्णरूपसे भोग नहीं लेता, तबतक उसे मुक्ति नहीं मिलती, संचित कर्मोंका नाश करनेके लिये उसे बार-बार जन्म लेना पड़ता है, वह चौरासी लक्ष योनियोंमें जन्म-मृत्युके फेरोंमें रहटकी तरह फिरता रहता है, केवल कर्मभूमिमें स्थित मनुष्योंको कर्मोंकी निष्पत्ति होती है। भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके॥

(गीता १५।२)

इस संसारवृक्षकी तीनों गुणरूप (सत्त्व, रज, तम) जलके द्वारा बढ़ी हुई शाखाएँ तीनों लोकमें (देवता, मनुष्य और पशु-पक्षीके रूपमें) ऊपर-नीचे फैली हुई हैं, शुभ-अशुभ कर्मोंके फल भोगनेके लिये, कर्मोंके अनुसार जीव विविध योनियोंमें जन्मके बन्धनमें अटकता है, कर्मोंकी निष्पत्ति मानवयोनिमें ही होती है।

कर्मोंके अनेक प्रकार हैं, उनकी गति गूढ़ रहती है। अतः कर्ममीमांसा करना बहुत कठिन है, भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥

(गीता ४।१७)

कर्मका, अकर्मका तथा विकर्मका रूप भी जानना चाहिये, क्योंकि कर्मकी गति गहन है।

कर्म, अकर्म और विकर्म—इन शब्दोंके अर्थके बारेमें टीकाकारोंमें एक राय नहीं है, जयकृष्णी पन्थके टीकाकार कर्म यानी सकाम शुभकर्म, अकर्म यानी जो शुभ नहीं वह अकर्म अर्थात् अशुभ कर्म (दुष्कर्म) विकर्म यानि विशेष कर्म, जो सकाम नहीं अर्थात् ईश्वरार्पण कर्म जो मोक्षाधिकार प्राप्त करते हैं, इस तरीकेसे कर्मोंका विश्लेषण करते हैं, इसके विपरीत कुछ टीकाकार कर्मका अर्थ शुभ कर्म (पुण्यरूप कर्म), अकर्मका अर्थ (पापरूप या अशुभ कर्म) और विकर्मका अर्थ (ईश्वरार्पण कर्म) ऐसा भी करते हैं, कुछ टीकाकार अकर्मका अर्थ कर्ताभावरहित कर्म ऐसा करते हैं, जैसे जनक राजा कर्म करते हुए भी अकर्ता था। कुछ लोग विकर्मका अर्थ विपरीत कर्म अर्थात् निषिद्ध कर्म ऐसा करते हैं, तो कुछ लोग विशेष कर्म अर्थात् निष्काम कर्म (ईश्वरार्पण कर्म) ऐसा करते हैं।

कोई भी कर्म शुभ, अशुभ तथा मिश्रित होता है, भगवान् श्रीचक्रधर स्वामीने कहा है—**'क्रिया उभयरूपा'** (विचारसूत्र २०७) अर्थात् सभी क्रियाएँ शुभाशुभ मिश्रित होती हैं, जो पुरुष कर्मोंमें अकर्म और अकर्मोंमें कर्म देखता है, वह पुरुष बुद्धिमान् होता है (गीता ४।१८), कोई भी कर्म देश, काल और परिस्थितिके अनुसार अच्छा या बुरा होता है, जो मुमुक्षु पुरुष विचारपूर्वक कार्य करता है, वही सच्चा कर्मयोगी होता है, वही मोक्षका अधिकारी है।

अज्ञानवश मोहग्रस्त होकर कर्मबन्धनमें अटके हुए लोग (जीव) दुःख भोगते रहते हैं, इन दुःखोंका निवारण करनेहेतु भगवान् श्रीकृष्णने भगवद्गीतामें कुछ उपाय बताये हैं, अज्ञानयुक्त कर्मोंसे दुःख निर्माण होते हैं, अतः भगवान्ने अज्ञानका नाश करनेको कहा है, जैसे—

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥

(गीता ४।३७)

हे अर्जुन! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनको भस्मसात् कर देती है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मोंको (आगन्तुक, अनारब्ध, प्रारब्ध, संचित, क्रियमाण आदि) भस्ममय कर देता है।

अज्ञान कर्मजनित दुःखका मूल कारण है। इसलिये भगवान्ने सर्वप्रथम उसे हटानेको कहा है, यहाँ ज्ञानका मतलब ब्रह्मविद्याका ज्ञान या ईश्वरीय ज्ञान (शाब्द, अपरोक्ष, सामान्य और विशेषसे आत्मज्ञान) होता है, उससे जीवके मल, कर्म, अविद्या, पाप आदिका नाश होता है। उनका नाश होनेके बाद जीव मोक्षको प्राप्त

होता है, मोक्षप्राप्तिके बाद जीव परमानन्द परमशान्ति और जन्म-मृत्युके फेरोंसे मुक्ति पाता है।

भगवान् श्रीकृष्णने दूसरा उपाय निष्काम कर्म करनेका कहा है, सकाम कर्म बन्धनकारक होते हैं, उनसे जीव अनेक योनियोंके चक्करमें अटक जाता है, मुक्ति अर्थात् ईश्वरप्राप्ति निष्काम कर्मोंसे होती है, कर्मफलोंकी कामना करना दु:खोंका मूलकारण होता है, इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥

(गीता २।४७)

तेरा कर्म करनेमात्रमें ही अधिकार है, फलमें कभी नहीं और तू कर्मके फलकी वासना भी मत रख तथा तेरी कर्म न करनेमें भी प्रीति न हो। भगवान् श्रीकृष्णने कर्मके फलका त्याग करनेको कहा है। कर्मका नहीं मनुष्य उसके विपरीत करता है, वह अधिकतर कर्म सहेतुक (सकाम) करता है। सकाम कर्मोंके फल नाशवान्, क्षणिक और दु:खमिश्रित होते हैं। परमानन्द तथा परमशान्ति निष्काम कर्मोंसे ही मिलती है। मनुष्य सकाम कर्मोंसे सांसारिक एवं दिव्य फल प्राप्त कर सकता है, परंतु ईश्वरप्राप्ति नहीं कर सकता। भगवान् श्रीचक्रधरस्वामीने कहा है—'एक परमेश्वरको छोड़कर जीव कर्मोंद्वारा सबकुछ प्राप्त कर सकता है।' (विचार २०५) भगवान् श्रीकृष्णने कर्मयोगके साथ-साथ समत्वयोग भी कहा है—

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

हे धनंजय! आसक्ति त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धिवाला होकर, योगमें स्थित हुआ कर्मोंको कर, यह समत्वभाव ही समत्वयोग नामसे जाना जाता है। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है—'तू सिद्धि-असिद्धि, सफलता-असफलता, हिंसा-अहिंसा, सुख-दु:ख, धर्म-अधर्म आदि द्वन्द्वोंसे मुक्त हो; क्योंकि आसक्तिरहित द्वन्द्वमुक्त और मोहशून्य होकर ज्ञानी लोग उस अविनाशी परमपदको प्राप्त होते हैं, (गीता १५।५) कर्मबन्धनसे मुक्त होनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥

(गीता २।५०)

समबुद्धियुक्त पुरुष पाप-पुण्य दोनोंको इस लोकमें ही त्याग देते हैं अर्थात् उनसे लिपायमान नहीं होते, इससे समत्वबुद्धि योगके लिये चेष्टा करे, यह बुद्धिरूपी योग ही कर्मोंमें कुशलता है अर्थात् कर्मबन्धनसे छूटनेका उपाय है। भगवान् श्रीकृष्णने सब कर्म ईश्वरार्पण करनेको कहा है। जैसे—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(गीता ९।२७)

हे अर्जुन! तू जो कुछ कर्म करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है, जो कुछ दान देता है, जो कुछ स्वधर्माचरणरूप तप करता है, वह सब मुझे अर्पण कर। जीव या देवता मनुष्यके कर्मोंका नाश नहीं कर सकते, कर्मोंका नाश केवल परमेश्वर ही कर सकता है। अतः परमेश्वरकी शरण जाकर परमेश्वरकी अनन्य एवं निष्काम भक्ति करनी चाहिये। सब कर्म ईश्वरार्पण बुद्धिसे करने चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णने कर्मबन्धनसे मुक्त होनेके लिये कहा है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८।७७)

सब धर्मोंको (इन्द्रियधर्म, देहधर्म, मनोधर्म, देवताधर्म, देशधर्म आदि) और कर्त्तव्य कर्मोंको त्यागकर मुझ अकेलेकी अनन्य शरणमें आ, मैं तुझे सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर। श्रीचक्रधर स्वामीने भी कहा है—'**येय शरण आलेया काई मरण असो** (आचार २१७) अर्थात् हमारी शरणमें आनेपर कोई कष्ट (मृत्यु भी)-को नहीं प्राप्त होता है। परमेश्वरकी शरणमें आनेपर जीवको मृत्युतकके कष्ट नहीं भोगने पड़ते हैं।

भगवत्कथा-श्रवणकी महिमा

(श्रीराजेन्द्र प्रसादजी द्विवेदी)

भगवद्भक्तिके प्रमुख साधनोंमें 'श्रवण' का उच्च स्थान है। निस्संदेह श्रवण भक्ति-साधनाका प्रेरक तत्त्व है; क्योंकि यह मनुष्यकी जन्मजात रागात्मिका वृत्ति, जो तत्त्वतः प्रेममूला है, के आधारपर स्थित होनेके कारण अपने उद्गम परमात्माके विषयमें जाननेके लिये स्वाभाविक रूपसे उत्सुक रहती है। ज्ञानार्जनका द्वार होनेके कारण श्रवणका मानव-जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें महत्त्व है; क्योंकि जाने बिना किसीके प्रति प्रेम नहीं होता। इसी तथ्यपर बल देते हुए गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई॥

(रा०च०मा० ७। ८९। ७-८)

अतएव, प्रेम-रूपा भक्तिका प्रथम सोपान है—श्रवण-दर्शन। हरि-कथा-श्रवणका इतना अधिक महत्त्व है कि जब श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्‌को श्रीमद्-भागवतकी कथा सुनानेको तत्पर हुए, तब देवतागण अमृत-कलश लेकर उपस्थित हुए और उनसे प्रार्थना की कि वे अमृतसे परिपूर्ण कलश लेकर बदलेमें उन्हें श्रीमद्भागवतका दान दे दें, परंतु शुकदेवजीने देवताओंको कथामृतका दान देनेसे स्पष्ट अस्वीकार कर दिया। स्पष्ट है कि भागवत अथवा प्रभु-कथाका अमृत देवताओंको भी दुर्लभ है।

ध्यातव्य है कि श्रवणमें श्रद्धाका विशेष महत्त्व है। सच्ची श्रद्धाके मूलमें 'श्रत' है, जिसका अर्थ है सत्यको धारण करनेवाली मनोवृत्ति या उत्कण्ठा, जो किसीके प्रति तभी उत्पन्न होती है, जब उसके गुणों तथा महत्त्वकी प्रतीति हो जाय। इस प्रकारके श्रद्धापूर्ण श्रवणमात्रसे राजा परीक्षित्‌को मोक्ष-प्राप्ति सम्भव हुई। भगवान्‌की सुमधुर, मंगलमयी लीलाओंके श्रद्धापूर्वक श्रवणसे चित्तवृत्तिकी शुद्धि होती है, कल्याणकारी संकल्पोंकी उत्पत्ति होती है तथा प्रभु-भक्ति दृढ़ होती है। भगवत्कथामृतका पान करनेसे सद्वृत्तियोंका विकास ही नहीं होता, वरन् परार्थ एवं परमार्थ-सम्बन्धी विचारोंसे 'विमल वैराग्य' की उत्पत्ति होती है, जो अन्ततः व्यक्तिके सदाचारका आधार बनते हैं।

वस्तुतः भक्तिके नौ सोपानोंमें श्रवणका स्थान प्रथम है। भक्त प्रह्लादने अपने पिता हिरण्यकशिपुको भगवान् विष्णुकी भक्तिके नौ भेद बताते हुए कहा था—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(श्रीमद्भागवत ७। ५। २३)

अर्थात् भगवान् विष्णुकी कथाका श्रवण, उन्हींका कीर्तन, रूपनामादिका स्मरण, उनके चरणोंमें समर्पण। इसी सन्दर्भमें श्रीरामद्वारा शबरीके प्रति 'नवधा भक्ति' का निरूपण निम्नांकित शब्दोंमें किया गया है—

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥

(रा०च०मा० ३। ३५। ८)

स्मरण रहे कि यद्यपि गोस्वामीजीने श्रवणको द्वितीय स्थान दिया है, तथापि ***'मम कथा प्रसंगा'*** से तात्पर्य सत्संगसे है, जिसमें धार्मिक प्रवचन तथा कथा-श्रवण तो स्वाभाविक रूपसे अन्तर्निहित है ही। श्रीरामचरितमानसमें जब श्रीराम वनवासकी अवधिमें महर्षि वाल्मीकिसे अपने निवासहेतु उपयुक्त स्थान जाननेकी प्रार्थना करते हैं, तो ऋषिने उन्हें जो विशिष्ट चौदह (१४) स्थान बताये, उनमें हरिकथा-श्रवणको शीर्ष स्थान दिया—

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥

(रा०च०मा० २। १२८। ४-५)

अर्थात् आपकी कथाएँ विविध नदियोंके रूपमें जिनके कानोंमें प्रवेश करती रहती हैं और उनके समुद्ररूपी कान कभी भी नहीं भरते, वहीं आपका उचित निवास है। इसका आशय यह है कि हरिकथा-श्रवण

स्वयं ही भक्तिस्वरूप है।

श्रुति-स्मृतिकी पुरातन एवं प्रचलित गुरु-परम्पराका उल्लेख ही नहीं निर्वाह भी करते हुए गोस्वामीजीने 'मानस' की रचना करनेसे पूर्व कहा—

मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई । तेहिं मग चलत सुगम मोहि भाई॥

(रा०च०मा० १।१३।१०)

अपने गुरुवरद्वारा कही गयी रामकथाको बारम्बार सुनकर ही गोस्वामीजीने 'मनके प्रबोध' (स्वान्तः सुखाय)-हेतु 'मानस' की रचना की—

भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरें मन प्रबोध जेहिं होई॥

(रा०च०मा० १।३०।२)

रचनाके सम्बन्धमें गोस्वामीजीकी स्वीकारोक्ति कितनी श्लाघ्य है—

श्रोता बकता ग्याननिधि कथा राम कै गूढ़।
किमि समुझौं मैं जीव जड़ कलि मल ग्रसित बिमूढ़॥

(रा०च०मा० १।३० (ख))

वास्तवमें 'रामकथा' गूढ़ है; क्योंकि इसके गम्भीर रहस्यों और सांकेतिक अभिप्रायोंका सम्यक् बोध ज्ञानवान् एवं श्रद्धालु श्रोताओंको ही सम्भव है। 'मानस' शुद्ध श्रद्धावान् एवं भक्त पुरुषोंके लिये ही सुगम है, अन्य व्यक्तियोंके लिये अगम है—

जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ॥

(रा०च०मा० १।३८)

आदर्श वक्ताओं और श्रोताओंका उल्लेख करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं—

संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। राम भगत अधिकारी चीन्हा॥
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥

(रा०च०मा० १।३०।३—५)

उक्त सभी श्रोताओं और वक्ताओंकी अद्भुत भक्ति तथा शील एवं दिव्यदृष्टिकी प्रशंसा गोस्वामीजीने निम्नांकित शब्दोंमें की है—

ते श्रोता बकता समसीला। सवँदरसी जानहिं हरिलीला॥

आदर्श श्रोताओंके गुणोंकी व्याख्या करते हुए गोस्वामीजीने लिखा है—

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरिदास।
पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास॥

(रा०च०मा० ७।६९ ख)

अर्थात् श्रोता श्रेष्ठ, सुन्दर बुद्धिवाला हो, सुशील हो, पवित्र हो, कथाका रसिक हो तथा हरिका दास हो। ऐसे श्रोताको पाकर सज्जन लोग इस अति गोपनीय रहस्यको प्रकट कर देते हैं। इस सम्बन्धमें प्रख्यात मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्यायने कहा था—'रामायण' में एक श्रोता तैयार करनेमें शंकरजीका कितना समय लग गया! सचमुच श्रोता बनना कठिन है। अधिकांश कवियोंकी आकांक्षा रहती है कि कोई सुननेवाला मिले, पर शंकरजीने रामायणको बनाकर अपने हृदयमें रख लिया और पता नहीं कितने लाख वर्ष बीत गये, तब कहीं एक श्रोता मिला और शंकरजीने उन्हें यह कथा सुनायी। वास्तवमें सतीजीको श्रोता बननेके लिये एक नया ही जन्म लेना पड़ा—

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥

(रा०च०मा० १।३५।११)

पार्वतीजीकी रामकथा जाननेकी तीव्र जिज्ञासाकी सराहना करते हुए शंकरजीने कहा—

धन्यासि भक्तासि परात्मनस्त्वं यज्ज्ञातुमिच्छा तव रामतत्त्वम्।
पुरा न केनाप्यभिचोदितोऽहं वक्तुं रहस्यं परमं निगूढम्॥

(अध्यात्मरामायण १।१।१६)

अर्थात् हे देवि! तुम धन्य हो। तुम परमात्माकी परमभक्त हो, जो तुम्हें रामका तत्त्व जाननेकी इच्छा हुई। इससे पूर्व इस परम गूढ़ रहस्यका वर्णन करनेके लिये मुझसे अन्य किसीने नहीं कहा। तत्पश्चात् शंकरजीने जिस रामकथाका वर्णन किया, उसकी अपार महिमाके सम्बन्धमें गोस्वामीजीने भरतजीकी प्रशंसामें जनकजीके मुखसे जो शब्द कहलवाये, वे उनके कालातीत महाकाव्य 'मानस' पर अक्षरशः लागू होते हैं—

सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथु अमित अति आखर थोरे॥

(रा०च०मा० २।२९४।२)

तात्पर्य यह कि 'मानस' केवल लोकरंजक रचना ही नहीं, अपितु पुरुषार्थ-चतुष्टय अर्थात् धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष सभीको प्राप्त करनेका साधन-सोपान है—

जग मंगल गुनग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के॥

(रा०च०मा० १।३२।२)

संक्षेपत: उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि परमात्मा अथवा देवी-देवताओंकी अलौकिक लीलाओंके मनोयोग-पूर्वक श्रवणमात्रसे अप्रतिम लाभ तथा कृतकृत्यताकी उपलब्धि सम्भव है। इस तथ्यकी पुष्टिमें कुछेक प्रसिद्ध उदाहरण देना पर्याप्त होगा—

श्रीहनुमान्जीद्वारा श्रीरामका गुणानुवाद सुनकर विभीषणका रामानुराग दृढ़ हो गया और वह प्रभु रामकी शरणमें गया। इसी प्रकार अशोकवाटिकामें वियोगिनी सीताजीने जब हनुमानजीद्वारा रामकथा सुनी—

रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥

(रा०च०मा० ५।१३।५)

तब उनका दु:ख नष्ट हो गया तथा 'श्रवनामृत' के कारण ही उन्हें हनुमान्जीपर दृढ़-विश्वास हो गया। कालान्तरमें देवी रुक्मिणीको श्रीकृष्णजीका हृदयहारी स्वरूप एवं भक्तानुग्रही स्वभाव सुनकर ही उनके प्रति पूर्ण अनुरक्तिकी उत्पत्ति हुई तथा उसके फलस्वरूप वे प्रभुके प्रेम-बन्धनमें बँधीं, समर्पित हुईं और उनकी धर्मपत्नी बनीं।

सारांश यह कि ज्ञाननिधि वक्ताओंद्वारा भगवच्चरित्रका वर्णन तथा उसको श्रद्धापूर्वक, तन्मय होकर सुननेसे अतिशय लाभ ही नहीं होता, वरन् नैतिक तथा आध्यात्मिक पथ प्रशस्त होता है और यह जीवनके चरम लक्ष्यकी प्राप्तिका सुदृढ़ संबल बनता है।

रत्न-मंजूषा गीता

(डॉ० श्रीसुरेशचन्द्रजी शर्मा)

श्रीमद्भगवद्गीताको यदि एकमात्र हिन्दूशास्त्र न कहा जाय, तो भी यह एक महत्त्वपूर्ण हिन्दूशास्त्र तो है ही। यह तीन प्रधान शास्त्रोंमें जिन्हें 'प्रस्थानत्रयी' कहा जाता है, एक माना जाता है; इसके अतिरिक्त अन्य शास्त्र हैं—उपनिषद् एवं ब्रह्मसूत्र। यह एक ऐसा शास्त्र है, जिसपर सर्वाधिक भाष्य, टीकाएँ तथा व्याख्याएँ लिखी गयी हैं; क्योंकि यह आध्यात्मिकताका एक शाश्वत स्रोत रहा है और ऐसा होना उचित ही है; क्योंकि इसमें विभिन्न दर्शनों, नीतिशास्त्र एवं धर्मका ऐसा संगम है, जो विविध मनोवृत्तियोंके अनुकूल है। यद्यपि इसकी इस प्रकारकी सार्वभौमिक प्रकृतिके कारण कुछ विद्वान् भ्रमित भी हैं। इसका कारण यह है कि वे इसमें विभिन्न दर्शन-प्रणालियों—अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, अचिन्त्य भेदाभेद, सांख्य, वेदान्त, मीमांसा, कर्म, भक्ति, ज्ञान तथा योग और यहाँतक कि सविशेष तथा निर्विशेष ईश्वरके बीच समन्वय-सूत्र नहीं देख पाते। इस कारण कुछ लोगोंने इसे भ्रमजाल भी बतला दिया है। भारतका जनमानस और शिक्षित वर्ग भी यद्यपि इसका सम्मान तो करता है; परंतु यह वर्ग भी इसमें स्वयंको गढ़नेकी एक स्पष्ट एवं व्यवस्थित पद्धति नहीं देख पाता। कुछको ऐसा लगता है कि इसमें बहुत सारी सामग्री बेमेल जोड़ दी गयी है। उन्हें लगता है कि भारतीय संस्कृतिके विभिन्न संघर्ष-कालोंमें सम्पूर्ण महाभारतमें बहुत सारे परिवर्तन हुए हैं तथा गीता उसीका एक भाग है। आलोचकोंकी ये मान्यताएँ कितनी ही लुभावनी क्यों न लगें; परंतु भारतीय संस्कृतिकी इस 'ज्ञान-मंजूषा' को खोलनेकी कुंजी इसकी समन्वयी दृष्टि उनके हाथ नहीं लग पायी है।

भारतीय ऋषि-मुनि राष्ट्रीय जीवनके किसी भी कालमें तथा जीवनके किसी भी क्षेत्रमें कट्टर विचारधाराके पोषक नहीं रहे। इस वैचारिक स्वातंत्र्यने उन्हें 'विविधतामें एकता' देख पाने तथा एक समन्वयी दृष्टिकोण विकसित करनेमें सक्षम बना दिया। यह समन्वयी एवं सर्वग्राही दृष्टिकोण धर्मके क्षेत्रमें विशेष रूपसे देखा जा सकता है। ऋग्वेदकी प्रसिद्ध उक्ति है—'**एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**'। ऋषिके इस असाधारण अनुसन्धानने भारतीय राष्ट्रकी सभ्यताका निर्माण किया तथा बादमें भी एकके बाद एक ऋषि, सन्त, महात्मा तथा विभूति एवं अवतार आते गये, जिसके परिणामस्वरूप इस उदारवादी दृष्टिका प्रभाव उनके अवचेतनपर इतना अधिक हुआ कि हिन्दुओंमें अनेक धर्मों, दर्शनों तथा आध्यात्मिक संस्कृतिके अनेक रूपोंको स्वीकारकर जनमानसको उनके स्वभावके अनुसार उन्हें जीनेकी स्वतन्त्रता प्रदान कर दी। गीताकी भावना इस सत्यका प्रत्यक्ष प्रमाण है। ये समन्वयके महान् प्रवक्ता थे और उन्होंने हर उपासना-प्रणालीको स्वीकारकर उसे उसका उचित स्थान प्रदान किया है। यदि मनुष्यको आध्यात्मिक प्रगति करनी है तो उसे धर्मकी अपने स्वभावके अनुकूल पद्धतिको स्वीकार करनेकी स्वतन्त्रता होनी चाहिये। जो मनुष्यके स्वभावके प्रतिकूल है, उसे उसके मनपर थोपनेका अर्थ होगा उसकी आध्यात्मिक मृत्यु। अतः गीताका निर्देश है कि ज्ञानी पुरुष मनुष्योंमें बुद्धिभेद उत्पन्न न करे (३।२६, २९)। मनुष्य मुझे जिस प्रकार भजता है, मैं उसे उसी प्रकार स्वीकार करता हूँ; क्योंकि सभी मार्ग मेरी ओर ही आ रहे हैं (४।११)। इस भावसे प्रेरित होकर गीतामें उस समयके प्रचलित आदर्शोंको सुन्दर तरीकेसे समन्वित कर दिया गया है।

कर्म और ज्ञानका समन्वय

भगवद्‌गीता स्वर्गमें भोग प्रदान करनेवाले वैदिक कर्मकाण्डको अधिक सम्मान और महत्त्व नहीं देती। वह मीमांसकोंके इस सिद्धान्तको स्वीकार नहीं करती कि यज्ञोंके द्वारा स्वर्गसुखको प्राप्त करना ही मुक्तिका साधन है और यही धर्मका सार सर्वस्व है (२।४२—४६)। गीताके अनुसार यज्ञानुष्ठान शक्ति और सुख-प्राप्तिके साधन हैं, जिनके द्वारा स्वर्गसुख तो पाया जा सकता है; किंतु स्वर्ग और उसका सुख शाश्वत नहीं है। जैसे ही उसका पुण्य समाप्त होता है। जीवात्माको पृथ्वीपर पुनः जन्म लेना पड़ता है। स्वर्गसुख आगमापायी है तथा देवताओंके उपासक देवताओंको प्राप्त होते हैं। केवल भगवान्‌का भक्त ही भगवान्‌को प्राप्तकर मुक्त हो सकता है। यहाँतक कि जो देवताओंकी उपासना करते हैं, वह भी भगवान्‌की ही उपासना है; परंतु उन्हें इसका ज्ञान न होनेके कारण कि वे वास्तवमें एक ईश्वरके ही रूप हैं, वे स्वर्गसुख प्राप्तकर पुनः सांसारिक जीवनमें आ जाते हैं (९।२०—२५)। परंतु यदि वे यह जानकर यज्ञ करते हैं कि वे देवगण भी वास्तवमें एकमेव ईश्वरके रूप हैं, तो वे मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। अतः गीता उपनिषदोंके स्वरमें स्वर मिलाकर घोषित करती है कि ज्ञानसे मुक्ति प्राप्त होती है न कि यज्ञसे, इसलिये गीता अर्जुनसे त्रिगुणातीत होनेका आग्रह करती हुई स्वर्गको त्रिगुणात्मक बतलाती है (२।४५)।

यद्यपि गीता यह स्वीकार करती है कि जो कामनाओंमें डूबे हुए हैं तथा स्वर्गसुख चाहते हैं, उनके लिये यज्ञ उपयोगी होते हैं, क्योंकि ऐसे लोगोंको कुछ सीमातक सुखभोग आवश्यक होता है तथा पूर्णनिष्कामताकी स्थिति प्राप्त होनेके पूर्व उन्हें सुखभोग प्राप्त होनेका अवसर प्राप्त होना चाहिये। निष्कामता ही जीवनका अन्तिम लक्ष्य है। कामना ही ज्ञानको ढँके रहती है। अतः इन्द्रिय, मन, बुद्धि जो कामनाके अधिष्ठान हैं, उन्हें नियंत्रित करते हुए कामनाका नाश करना चाहिये (३।३०—४१); परंतु उच्चतम आदर्शका पालन सबके लिये सम्भव नहीं है। आदर्श, मनुष्योंकी

क्षमताके अनुसार निर्धारित किया जाना चाहिये, क्योंकि क्रमोन्नति तभी सम्भव है न कि परिपक्वावस्था प्राप्त होनेके पूर्व ही उच्चतम आदर्शकी अभीप्सा करना। आदर्शोंका संभ्रम व्यक्ति एवं सामाजिक कल्याणमें बाधक है। कामोपभोगसे प्रारम्भ करते हुए शास्त्रोंके आदेशोंका पालन निष्कामताकी ओर ले जाता है। परंतु निषिद्ध आचरणोंको जीवनमें कभी स्थान नहीं देना चाहिये (१६।२३-२४)। यहाँतक कि भोगजीवनकी भी एक सीमा होनी चाहिये; अन्यथा मनुष्य पशुके स्तरपर गिर जाता है। यद्यपि यह कहना कि कामनाके भोगसे मनुष्य निष्कामताकी स्थितिको प्राप्त कर लेता है—विरोधाभासी प्रतीत होता है। यज्ञ करनेवाला यद्यपि कामनासे प्रेरित होकर ही यज्ञ करता है; अपने इष्टदेवके प्रति कुछ-न-कुछ भाव तो उसमें होता ही है और उसके भावके अनुसार इष्टदेव उसे फल प्रदान करते हैं। अतः इस कामनाप्रेरित यज्ञसे भी उसमें कुछ-न-कुछ निष्कामता आती ही है, स्वार्थपरता धीरे-धीरे कम होती जाती है और कर्तव्यभाव प्रमुख हो जाता है। गीतामें '**परस्परं भावयन्तः**' (३।१०—१६)-को स्वीकार किया गया है। इस प्रकार गीता कर्तव्यकी एक संकीर्ण धारणा प्रस्तुत करती है, परंतु साथ ही यह धारणा व्यापक होकर प्रत्येक कर्मको कर्तव्यका रूप दे देती है (२।३१—३३)। इस प्रकार कर्तव्यकी कोई भी अवधारणा सार्वभौमिक रूपसे स्वीकार नहीं की जा सकती। कर्तव्यकी धारणा व्यक्तिकी स्थिति और परिस्थितिके अनुसार परिवर्तित होती रहती है। कर्तव्यकी एकमात्र सार्वभौमिक एवं सर्वमान्य अवधारणा यह है कि जो मनुष्यको ईश्वरोन्मुखी बनाये तथा उसे इन्द्रिय स्तरसे ऊपर उठाये, वह कर्तव्य है, अन्यथा कर्तव्य नहीं है। वह अधर्म है। कर्तव्य हमारे पूर्व जीवनके संस्कारोंसे निर्धारित होता है और उसका एकमात्र उद्देश्य ईश्वरकी ओर उन्मुख होना है। इस प्रकार कर्तव्यके पीछे हमारी कोई मनमर्जी नहीं चलती और ऐसा करनेसे मनुष्य पापका भागी भी नहीं होता। इस कारण गीता सदोष कर्मको त्याग देनेको नहीं कहती, क्योंकि प्रत्येक कर्ममें कुछ-न-कुछ दोष लगा ही रहता है। अतः स्वधर्मका आचरण ही मुक्तिका साधन है (१८।४५—४८)। अतः कर्तव्यका आशय केवल यज्ञ करना न होकर आध्यात्मिक भावापन्न बनानेवाला प्रत्येक कर्म हो जाता है। इस प्रकार दान, त्याग, इन्द्रिय-संयम, प्राणायाम, मन्त्र-जपको भी यज्ञ बतलाया गया है (४।२५—३०, १०।२५)। वस्तुतः गीताके अनुसार सम्पूर्ण कर्म ही यज्ञस्वरूप है, यदि वह ईश्वरार्पण बुद्धिसे किया जाता है, क्योंकि यज्ञकर्ममें अर्पणकी क्रिया ही प्रमुख तत्त्व है। इस दृष्टिसे मीमांसकोंका सूत्र 'यज्ञके अतिरिक्त किया जानेवाला कर्म ही बन्धनका कारण होता है', एक व्यापक अर्थ ग्रहण कर लेता है, प्रत्येक कर्म ही यज्ञस्वरूप हो जाता है तथा द्रव्ययज्ञकी अपेक्षा ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार वैदिक शब्द वेदान्तमें एक व्यापक रूप धारण कर लेता है, जो सबको समान रूपसे मान्य है। इस प्रकार भगवान् अर्जुनसे पुनः कहते हैं, तू यज्ञभावसे ही कर्म कर (३।९); क्योंकि यज्ञभावसे करनेपर सम्पूर्ण कर्म गल जाता है (४।२३)।

इसके पश्चात् भगवान् कर्तव्यकी और भी उच्च अवधारणा प्रस्तुत करते हैं, जिसमें स्वार्थप्रेरित कर्मके लिये स्थान होते हुए भी सभी प्रकारकी आसक्तियोंकी आहुतियाँ देनेकी स्वतंत्रता भी रहती है। और इस प्रकार मनुष्य एक क्षत्रियके रूपमें कर्तव्य कर्म करते हुए भी सन्तुष्ट रह सकता था; परंतु भगवान् कृष्णके परामर्शसे उसी कर्मको वह आसक्तिका त्याग करते हुए उसे मुक्तिका साधन बना लेता है। कर्ममें आसक्ति ही बन्धनका कारण है। अतः मनुष्यका एकमात्र कर्तव्य अनासक्त होकर मुक्त भावसे कर्म करना है, गीता हमें इसका सम्यक् बोध कराती है।

आरोग्य-चर्चा—

वर्टिगो

(डॉ० श्रीशिवशक्तिजी द्विवेदी)

१. क्या है वर्टिगो ?

वर्टिगो ऐसी स्थिति है, जिसमें आस-पासकी सभी चीजें घूमती हुई नजर आती हैं। अगर मरीज एक जगह बैठा भी हुआ है, तो भी उसे चक्कर आने-जैसा महसूस होता है। इस समस्याके दो प्रकार माने गये हैं—

पेरिफेरल वर्टिगो—इसे वर्टिगोका सबसे आम प्रकार माना गया है। जब कानके अन्दरूनी हिस्सेमें या वेस्टिबुलर तन्त्रिकामें किसी तरहकी समस्या आती है तो व्यक्तिको पेरिफेरल वर्टिगोका सामना करना पड़ता है। वेस्टिबुलर तन्त्रिका शरीरको संतुलित बनाये रखनेका काम करती है।

सेन्ट्रल वर्टिगो—मस्तिष्कमें किसी भी तरहकी समस्या होनेपर सेन्ट्रल वर्टिगोका सामना करना पड़ता है। इस समस्याके पीछे निम्न कारण हो सकते हैं—स्ट्रोक, ब्रेन ट्यूमर, माइग्रेन, इन्फेक्शन, सिरपर गम्भीर चोट लगना।

२. वर्टिगोके लक्षण

वर्टिगोकी समस्यामें शरीरका संतुलन बिगड़ने लगता है और चक्कर आने लगते हैं। इस बीमारीमें सिर इधर-उधर घुमानेसे समस्या और गम्भीर हो जाती है। जी मिचलाना, उल्टी आना, सिरदर्द, कानोंमें घण्टी-जैसी आवाजें सुनायी देना, कम सुनायी देना, आँखोंकी एक्टिविटीजपर असर, शरीरका सन्तुलन बिगड़ना।

३. वर्टिगोके कारण

वर्टिगो होनेके पीछे सिर या गर्दनपर चोट लगनेके साथ-साथ निम्नलिखित कारण भी हो सकते हैं—

इन्फेक्शन—वेस्टिबुलर नर्वमें किसी तरहका वायरल इन्फेक्शन होना वर्टिगोका कारण हो सकता है। इसे वेस्टिबुलर न्यूरिटिस या लैबीरिंथाइटिस कहा जाता है। तेज और बार-बार चक्कर आना इसके लक्षण हैं।

मेनिएरे डिजीज—अन्दरूनी कानमें अधिक फ्लूइड इकट्ठा होनेसे भी चक्कर आते हैं। वर्टिगोके ये लक्षण कुछ घण्टेतक रह सकते हैं। इस अवस्थाको मेनिएरे डिजीज कहा जाता है।

माइग्रेन—माइग्रेन भी वर्टिगोका कारण हो सकता है। इसमें सिरमें तेज दर्द, चक्कर, जी मिचलाना और उल्टी आना-जैसे लक्षण कुछ मिनटोंसे लेकर कुछ घण्टेतक रह सकते हैं।

सिर या गर्दनपर चोट लगना—सिर या गर्दनपर कोई गहरी चोट या चोटके कारण वेस्टिबुलर नर्व सिस्टममें समस्या होनेसे भी बार-बार चक्कर आनेकी समस्या हो सकती है।

बिनाइन पैरॉक्सिसमल पोजिशनल वर्टिगो—बिनाइन पैरॉक्सिसमल पोजिशनल वर्टिगोको आम समस्या माना गया है। इसमें सिर हिलानेसे भी चक्कर आते हैं। जब कैल्शियम पार्टिकल्स कानके अन्दर इकट्ठे हो जाते हैं, तब ब्रेनको पर्याप्त सिग्नल नहीं मिलते। इससे शरीरका सन्तुलन बिगड़ता है और चक्कर आते हैं।

कुछ दवाइयोंके सेवनसे—कुछ एंटीबॉयोटिक दवाओंके सेवनसे भी वर्टिगोकी परेशानी हो सकती है। सुनायी न देना या टिनिटसकी समस्या और सुस्ती इसके लक्षण हैं।

४. वर्टिगोका इलाज

वर्टिगोका इलाज दवा एवं एक्सरसाइजके जरिये किया जा सकता है।

दवाइयाँ—एन्टी हिस्टामाइन-जैसी दवाइयोंका प्रयोग इस स्थितिको ठीक करनेके लिये किया जाता है। बेशक, एन्टी हिस्टामाइन दवा वर्टिगोमें फायदेमन्द है, परंतु कुछ लोगोंको इसे लेनेसे साइड इफेक्टके रूपमें भ्रमकी स्थिति पैदा हो सकती है। इसलिये, किसी भी तरहकी दवाका सेवन करनेसे पहले डॉक्टरकी सलाह जरूर लेनी चाहिये।

एक्सरसाइज—कुछ एक्सरसाइज शरीरका संतुलन बनानेमें सहायक होती हैं। योगसे भी वर्टिगोकी समस्याको कुछ हदतक ठीक किया जा सकता है। साथ ही बैलेन्स ट्रेनिंगकी मददसे भी वर्टिगोको ठीक किया जा सकता है।

सर्जरी—अगर ब्रेन ट्यूमर या फिर सिरमें चोट लगनेके कारण वर्टिगोकी समस्या होती है, तो इस स्थितिमें डॉक्टर सर्जरीकी सलाह दे सकते हैं।

अरोमाथेरेपी—लैवेंडर-जैसे एसेंशियल ऑयलको सूँघनेसे चक्कर आने, उल्टी और जी मिचलाने-जैसी समस्यासे कुछ आराम मिल सकता है। साथ ही सिरदर्द एवं माइग्रेनमें भी आराम मिलता है।

तीर्थ-दर्शन— जम्मूस्थित त्रिकुटा पहाड़ीपर विराजमान देवी त्रिकुटा

(श्रीप्रमोदकुमारजी श्रीवास्तव)

वैष्णोदेवी मन्दिर, जिसे श्रीमाता वैष्णोदेवी मन्दिर और वैष्णोदेवी भवन भी कहा जाता है। यह हिन्दुओं और सिखोंकी आस्थाका महत्त्वपूर्ण केन्द्र है, जो माँ वैष्णोको समर्पित है, वैष्णो माँको सर्वोच्च माता लक्ष्मीके प्रमुख रूपोंमें-से एक माना जाता है। यह मन्दिर माँ दुर्गाको समर्पित ५२ महाशक्तिपीठोंमेंसे एक है, जिसकी व्यवस्था, संचालन श्रीमाता वैष्णोदेवी श्राइन बोर्ड नामक न्यासद्वारा किया जाता है।

यह मन्दिर हमारे देशके उत्तरी क्षेत्र केन्द्रशासित प्रदेश जम्मू काश्मीरमें त्रिकुटा पर्वतके ढलानपर अवस्थित है। यह स्थान कटरा, रियासीके नामसे जाना जाता है। मन्दिर ५२०० फीट (१५८५ मीटर)-की ऊँचाईपर कटरासे ७.४५ मील या १४ किमीकी दूरीपर अवस्थित है, पवित्र गुफाके भूवैज्ञानिक अध्ययनसे इस त्रिकुटा पहाड़ीके लगभग दस लाख वर्ष प्राचीन होनेका संकेत मिला है।

मान्यताओं और पौराणिक कथाओंके अनुसार त्रेतायुगमें माँका जन्म दक्षिणी भारतीय रत्नाकरके घरमें हुआ था, जिन्होंने त्रिकुटाकी पहाड़ियोंपर तपस्या की थी, इसी कारण उन्हें त्रिकुटाके नामसे भी जाना जाता है। तपस्याके दौरान ही माँका शरीर तीन दिव्य ऊर्जाओं आदिशक्तिस्वरूपा महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वतीके सूक्ष्म रूपमें विलीन हो गया और तभीसे त्रिकुटाकी गुफामें माँ इन आदिस्वरूपोंके शाश्वत निराकार रूपमें पिण्डीके रूपमें विद्यमान हैं।

एक और मान्यता है कि माताके एक भक्त श्रीधरने घरपर माता वैष्णोदेवी जो कन्याके रूपमें उपस्थित थीं, का पूजन किया। प्रसाद बाँटा, पूजनोपरान्त सभी गाँववालोंको प्रसाद वितरित किया गया। लोगोंने प्रसाद खाकर पूर्ण सन्तुष्टि महसूस की, परंतु उसीमें उपस्थित एक तान्त्रिक भैरोने मांसाहारी प्रसादकी माँग अपने लिये की, लेकिन वहाँ कन्याके रूपमें उपस्थित बालिका वैष्णोने ऐसा करनेसे इनकार कर दिया। भैरोने इससे अपने-आपको बहुत अपमानित महसूस किया और बालिका वैष्णोका पीछा किया, परंतु बालिकारूप माता वैष्णोदेवी अन्तर्धान हो गयीं।

बालिकाके गुप्त होनेसे श्रीधरने वैष्णोमातासे दर्शनकी लालसा दिखायी तो उसके बाद एक रात वैष्णोमाताने श्रीधरको सपनेमें दर्शन दिये और उन्हें त्रिकुटा पर्वतपर एक गुफा, जिसमें उनका प्राचीन मन्दिर अवस्थित है, का रास्ता दिखाया। बादमें यही मन्दिर माता वैष्णोदेवीके नामसे जाना जाने लगा, जहाँ उनका पीछा करता हुआ भैरो भी पहुँच गया, यह स्थान जो कटरा और गुफाके बीच लगभग ६ किमीकी दूरीपर है, देवीका मूल निवास था, जिसे अर्धकुमारी कहा जाता है।

वैष्णोदेवी गुफामें अपने मूलरूप दुर्गा (लक्ष्मीका एक रूप)-में बदल गयीं और अपनी तलवारसे भैरोका सिर काट दिया। आजकल इस स्थानको भवन कहा जाता है। भैरोका कटा सिर उस गुफामें लगभग एक किमी दूर एक छोटेसे पहाड़पर जा गिरा, जहाँ आज भैरो मन्दिर है। कहा जाता है कि अपने वधके उपरान्त भैरोको अपनी भूलका पश्चात्ताप हुआ और उसने देवीसे क्षमा माँगी और उनका आशीर्वाद माँगा।

कहा जाता है कि माताने भैरोनाथको वरदान दिया कि—'हमारे दर्शन तबतक पूरे नहीं होंगे, जब-तक वह भक्त मेरे दर्शनके बाद तुम्हारा दर्शन नहीं करेगा।

इस जम्मू क्षेत्रमें मुख्यतया डोंगरी और पंजाबी भाषाका प्रचलन है। इस क्षेत्रमें पंजाबी, हिमाचली और डोंगरे अधिक हैं, जो अपनी भाषामें 'जय माताकी' को 'जय माता दी' बोलते हैं।

गो-चिन्तन—

गायका दूध—आहार भी और औषध भी

(प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़)

दूध और घृतका रोजाना सेवन न केवल वृद्धावस्थाको रोकता है, अपितु व्यक्तिको रोगोंसे भी बचाता है। गायके दूधका उल्लेख नित्य सेवन किये जानेवाले रसायनके अन्तर्गत किया गया है। चरकसंहितामें आठ प्रकारके प्राणियोंके दूधके गुणोंका वर्णन किया गया है। ये हैं—भेड़का दूध, बकरीका दूध, गायका दूध, भैंसका दूध, ऊँटनीका दूध, हथिनीका दूध, घोड़ीका दूध और स्त्रीका दूध।

अविक्षीरमजाक्षीरं गोक्षीरं माहिषं च यत्।
उष्ट्रीणामथ नागीनां वडवायाः स्त्रियास्तथा॥

(च०सू० १।१०६)

इन सभी प्रकारके दुग्धोंमें गायका दूध सर्वश्रेष्ठ है और घृतोंमें भी गोघृत सबसे श्रेष्ठ है।

गव्यं सर्पिः सर्पिषां, गोक्षीरं क्षीराणाम्।

(च०सू० २५।३८)

प्रायः सभी प्राणियोंके दूध मधुर, शीत एवं स्निग्ध होते हैं। दूध शरीर धातुओंको पुष्ट करनेवाले, वृष्य, शारीरिक बलको बढ़ानेवाले, मेधाके लिये हितकर, मनको प्रसन्न रखनेवाले, जीवनीय, श्रमहर (थकावटको दूर करनेवाले), श्वास-कासनाशक होते हैं।

प्रायशो मधुरं स्निग्धं शीतं स्तन्यं पयो मतम्।
प्रीणनं बृंहणं वृष्यं मेध्यं बल्यं मनस्करम्॥
जीवनीयं श्रमहरं श्वासकासनिबर्हणम्॥

(च०सू० १।१०७-१०८)

सुश्रुतसंहिताके अनुसार गायका दूध कम अभिष्यन्दी, स्निग्ध, गुरु, रसायन, रक्तपित्तहर, शीत, रस और पाकमें मधुर और वात-पित्त विकारोंको दूर करनेमें श्रेष्ठ होता है।

अल्पाभिष्यन्दि गोक्षीरं स्निग्धं गुरु रसायनम्॥
रक्तपित्तहरं शीतं मधुरं रसपाकयोः।
जीवनीयं तथा वातपित्तघ्नं परमं स्मृतम्॥

(सु०सू० ४५।५०)

अगर किसी कारणवश बालकके लिये माँके दूधकी व्यवस्था नहीं हो पाती, तो गायके दूधका उसके लिये सात्म्य होनेके कारण उसका प्रयोग करना चाहिये।

गायके दूधमें दस गुण होते हैं—यथा मधुर, शीत, मृदु, स्निग्ध, बहल, श्लक्ष्ण, पिच्छिल, गुरु, मन्द और प्रसन्न।

स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्णपिच्छिलम्।
गुरु मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः॥
तदेवं गुणमेवौजः सामान्यादभिवर्धयेत्।
प्रवरं जीवनीयानां क्षीरमुक्तं रसायनम्॥

(च०सू० २७।२१७)

ओजके भी यही दस गुण होते हैं। गुणोंके समान होनेके कारण दूधके सेवनसे शरीरमें ओजकी वृद्धि होती है। यह सभी जीवनीय पदार्थोंमें श्रेष्ठ व रसायन है—

गुरु शीतं मृदु श्लक्ष्णं बहलं मधुरं स्थिरम्।
प्रसन्नं पिच्छिलं स्निग्धमोजो दशगुणं स्मृतम्॥

(च०चि० २४।३१)

जगत्‌में सभी कार्योंकी सिद्धिके लिये और प्रजामें प्रियताके लिये तथा आयुकी वृद्धिके लिये इन्द्रद्वारा निर्दिष्ट इन्द्रोक्त रसायनके निर्माणके लिये गायके दूधका प्रयोग होता है।

एषां पलोन्मितान् भागान् पयो गव्यं चतुर्गुणम्।

रोगोंकी चिकित्सामें गोदुग्ध

१. गोमूत्रके साथ गोदुग्धका प्रयोग वात-पित्तज शोथमें हितकर है। इस रोगमें अन्न और जलका त्यागकर ऊँटनीके दूधका प्रयोग करना चाहिये।

(च०चि० १२।२६)

२. क्षीण उदर रोगियोंके लिये गाय, भैंस व बकरीका दूध हितकर है।

शुद्धानां क्षामदेहानां गव्यं छागं समाहिषम्।

(च०चि० १३।१०७)

३. उदर रोगमें जब सब धातुओंका क्षय हो जाता है, तो गायका दूध उस तरह काम करता है, जिस तरह देवताओंके लिये अमृत।

प्रयोगापचिताङ्गानां हितं ह्युदरिणां पयः।
सर्वधातुक्षयार्तानां देवानाममृतं यथा॥

(च०चि० १३।१९४)

विभिन्न योगोंके निर्माणमें गोदुग्धका प्रयोग

१. संतानकी गुणवत्ता बढ़ानेहेतु प्रयुक्त वाजीकरण घृतके निर्माणमें गोदुग्धका प्रयोग होता है।

(चि०चि० २।१।३५)

२. विषम ज्वरमें पंचगव्यका प्रयोग हितकर है।

(च०चि० ३।३०४)

३. रक्तपित्तकी चिकित्सामें पाँच गुणा जलमें पकाया हुआ बकरी अथवा गायका दूध श्रेष्ठ होता है।

छागं पयः स्यात् परमं प्रयोगे गव्यं शृतं पञ्चगुणे जले वा।

(च०चि० ४।८३)

४. शतावरी अथवा गोक्षुरके कल्कको गोदुग्धसे पकानेपर उसका प्रयोग रक्तपित्तमें लाभकर है।

शतावरीगोक्षुरकैः शृतं वा शृतं पयो वाऽप्यथ पर्णिनीभिः।

(च०चि० ४)

५. बला, स्थिरा आदिका क्वाथ बनाकर उसे द्राक्षा, खर्जूर और सोंठसे सिद्ध गोदुग्धमें पकाकर प्रयोग करनेमें राजयक्ष्मा रोगमें उत्पन्न ज्वर, कासको ठीक करनेके साथ स्वरको श्रेष्ठ बनाता है।

बलां स्थिरां पृश्निपर्णी बृहतीं सनिदिग्धकाम्
साधयित्वा रसे तस्मिन्पयो गव्यं सनागरम्
द्राक्षाखर्जूरसर्पिर्भिः पिप्पल्या च शृतं सह।
सक्षौद्रं ज्वरकासघ्नं स्वर्यं चैतत् प्रयोजयेत्॥

(च०चि० ८।११४)

६. अपस्मार रोगकी चिकित्सामें वर्णित पंचगव्य घृत, महापंचगव्यघृतके निर्माणमें गोदुग्धका प्रयोग होता है। (च०चि० ९)

७. क्षतज कासकी चिकित्सामें प्रयुक्त पिप्पल्यादि-लेहके निर्माणमें गाय और बकरीके दूधका प्रयोग होता है।

पिप्पली मधुकं पिष्टं कार्षिकं ससितोपलम्।
प्रास्थिकं गव्यमाजं च क्षीरमिक्षुरसस्तथा॥

(च०सू० १८।१३५)

८. विष-चिकित्सामें वर्णित गन्धहस्ति नामक अगद योगके निर्माणमें गोदुग्धका प्रयोग होता है। (च०चि० २३।६७)

९. वातरक्तके रोगीको पीनेके लिये गाय और भैंसके दूधका प्रयोग करना चाहिये।

व्यञ्जनार्थं, तथा गव्यं माहिषाजं पयो हितम्।

(च०चि० २९।५३)

१०. जीवनीय द्रव्योंके अन्य द्रव्योंके साथ गोदुग्धके साथ कल्क बनाकर वातरक्तमें लेप करनेका विधान है।

कल्कार्थे जीवनीयानि गव्यं क्षीरमथाजकम्।

(च०चि० २९।५३)

११. बलासग्रथित नेत्ररोगमें शूकयुक्त पके जौको गोदुग्धमें पकाकर औषध प्रयोगके रूपमें सेवन करनेका निर्देश है।

रोगे बलासग्रथितेऽञ्जनं ज्ञैः कर्तव्यमेतत् सुविशुद्धकाये।
नीलान् यवान् गव्यपयोऽनुपीतान् शलाकिनः शुष्कतनून् विदह्य॥

(सु०उ० ११।११)

१२. गायके दधि, मूत्र, दूध, घी और गोमयके त्रिफलादि औषधियोंके संयोगसे निर्मित पंचगव्य घृत विषम ज्वरमें परम हितकर है।

१३. कुष्ठ एवं सभी प्रकारकी विपादिकाओंको नष्ट करनेवाले लाक्षादि घृतके निर्माणमें गोघृत और गोदुग्धका प्रयोग होता है।

मेदो मज्जा सिक्थकं गोघृतं च दुग्धं क्वाथः क्षीरिणां च द्रुमाणाम्।
एतत् सर्वं पक्वमैकध्यतस्तु वक्त्राभ्यङ्गे सर्पिरुक्तं प्रधानम्॥

(सु०चि० २५।४३)

१४. औषधसिद्ध सुवर्णभस्म गोघृत पीनेके बाद दुग्ध पीनेसे अलक्ष्मीका नाश होता है और दीर्घायु, राजसुख और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है।

सुभाषित-त्रिवेणी

श्रेष्ठ व्यक्तिके गुण
[Qualities of a noble person]

समैर्विवाहं कुरुते न हीनैः
समैः सख्यं व्यवहारं कथां च।
गुणैर्विशिष्टांश्च पुरो दधाति
विपश्चितस्तस्य नयाः सुनीताः॥

जो अपने बराबरवालोंके साथ विवाह, मित्रता, व्यवहार तथा बातचीत करता है, हीन पुरुषोंके साथ नहीं; और गुणोंमें बढ़े-चढ़े पुरुषोंको सदा आगे रखता है, उस विद्वान्‌की नीति श्रेष्ठ है।

A learned man's conduct is praiseworthy if he marries, makes friends, interacts socially and engages in conversation among equals. He shuns those who are not worthy of his association. He always behaves respectfully in the presence of the persons who are superior to him in learning and virtue.

मितं भुङ्क्ते संविभज्याश्रितेभ्यो
मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा।
ददात्यमित्रेष्वपि याचितः सं-
स्तमात्मवन्तं प्रजहत्यनर्थाः॥

जो अपने आश्रितजनोंको बाँटकर थोड़ा ही भोजन करता है, बहुत अधिक काम करके भी थोड़ा सोता है तथा माँगनेपर जो मित्र नहीं है, उसे भी धन देता है, उस मनस्वी पुरुषको सारे अनर्थ दूरसे ही छोड़ देते हैं।

A thinking person automatically gets rid of miseries who partakes of whatever is left after distributing the food among his dependents, who works more and sleeps less, and who gives away a part of his wealth to the needy who is not even his friend.

चिकीर्षितं विप्रकृतं च यस्य
नान्ये जनाः कर्म जानन्ति किञ्चित्।
मन्त्रे गुप्ते सम्यगनुष्ठिते च
नाल्पोऽप्यस्य च्यवते कश्चिदर्थः॥

जिसके अपनी इच्छाके अनुकूल और दूसरोंकी इच्छाके विरुद्ध कार्यको दूसरे लोग कुछ भी नहीं जान पाते, मन्त्र गुप्त रहने और अभीष्ट कार्यका ठीक-ठीक सम्पादन होनेके कारण उसका थोड़ा भी काम बिगड़ने नहीं पाता।

Such a person is unharmed and his goals are never destroyed who keeps to himself, and acts on his own volition and in his own interest; others never know even if he acts against their wishes.

यः सर्वभूतप्रशमे निविष्टः
सत्यो मृदुर्मानकृच्छुद्धभावः।
अतीव स ज्ञायते ज्ञातिमध्ये
महामणिर्जात्य इव प्रसन्नः॥

जो मनुष्य सम्पूर्ण भूतोंको शान्ति प्रदान करनेमें तत्पर, सत्यवादी, कोमल, दूसरोंको आदर देनेवाला तथा पवित्र विचारवाला होता है, वह अच्छी खानसे निकले और चमकते हुए श्रेष्ठ रत्नकी भाँति अपनी जातिवालोंमें अधिक प्रसिद्धि पाता है।

One ought to be ever ready to be at peace and conciliatory with others. One should be truthful, gentle and respectful towards others. Let one's thoughts be pure. A person with these attributes shines like a glistening, highly valuable gem from a reputed mine among his class.

य आत्मनापत्रपते भृशं नरः
स सर्वलोकस्य गुरुर्भवत्युत।
अनन्ततेजाः सुमनाः समाहितः
स तेजसा सूर्य इवावभासते॥

जो स्वयं ही अधिक लज्जाशील है, वह सब लोगोंमें श्रेष्ठ समझा जाता है। वह अपने अनन्त तेज, शुद्ध हृदय एवं एकाग्रतासे युक्त होनेके कारण कान्तिमें सूर्यके समान शोभा पाता है।

He is considered superior to others who is coy and does not show off. He radiates like the Sun because of his limitless brilliance, purity of heart and a composed mind.

[विदुरनीति १। १२२—१२६]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०८१, शक १९४६, सन् २०२४, सूर्य-उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ६।५३ बजेतक	शुक्र	अनुराधा दिनमें ९।५९ बजेतक	२४ मई	**मूल** दिनमें ९।५९ बजेसे।
द्वितीया सायं ६।३३ बजेतक	शनि	ज्येष्ठा ,, १०।३२ बजेतक	२५ ,,	**धनुराशि** दिनमें १०।३२ बजेसे, **रोहिणीका सूर्य** दिनमें ७।५४ बजे।
तृतीया ,, ५।४५ बजेतक	रवि	मूल ,, १०।३७ बजेतक	२६ ,,	**मूल** दिनमें १०।३७ बजेतक, **भद्रा** प्रातः ६।९ बजेसे सायं ५।४५ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९।३९ बजे।
चतुर्थी ,, ४।३१ बजेतक	सोम	पू०षा० ,, १०।१४ बजेतक	२७ ,,	**मकरराशि** दिनमें ४।२ बजेसे।
पंचमी दिनमें २।५३ बजेतक	मंगल	उ० षा० ,, ९।२८ बजेतक	२८ ,,	× × × ×
षष्ठी ,, १२।५५ बजेतक	बुध	श्रवण दिनमें ८।२३ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** दिनमें १२।५५ बजेसे रात्रिमें ११।४९ बजेतक, **कुम्भराशि** रात्रिमें ७।४२ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ७।४२ बजे।
सप्तमी ,, १०।४२ बजेतक	गुरु	धनिष्ठा प्रातः ७।० बजेतक	३० ,,	× × × ×
अष्टमी ,, ८।२० बजेतक	शुक्र	शतभिषा ,, ५।२७ बजेतक	३१ ,,	**मीनराशि** रात्रिमें १०।१४ बजेसे।
नवमी प्रातः ५।५२ बजेतक	शनि	उ० भा० रात्रिमें २।९ बजेतक	१ जून	**भद्रा** दिनमें ४।३८ बजेसे रात्रिमें ३।२४ बजेतक, **मूल** रात्रिमें २।९ बजेसे।
एकादशी रात्रिमें १२।५९ बजेतक	रवि	रेवती ,, १२।३७ बजेतक	२ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें १२।३७ बजेसे, **अचला एकादशीव्रत (सबका), पंचक समाप्त** रात्रिमें १२।३७ बजे।
द्वादशी ,, १०।४४ बजेतक	सोम	अश्वनी ,, ११।५ बजेतक	३ ,,	**मूल** रात्रिमें ११।५ बजेतक।
त्रयोदशी ,, ८।४१ बजेतक	मंगल	भरणी ,, ९।५२ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८।४१ बजेसे, **वृषराशि** रात्रिशेष ३।३९ बजेसे, **भौमप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी सायं ६।५८ बजेतक	बुध	कृत्तिका ,, ८।५९ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** दिनमें ७।५० बजेतक।
अमावस्या ,, ५।३४ बजेतक	गुरु	रोहिणी ,, ८।३३ बजेतक	६ ,,	**वटसावित्रीव्रत, अमावस्या।**

सं० २०८१ शक १९४६, सन् २०२४, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ४।३७ बजेतक	शुक्र	मृगशिरा रात्रिमें ८।१४ बजेतक	७ जून	**मिथुनराशि** दिनमें ८।१८ बजेसे।
द्वितीया ,, ४।९ बजेतक	शनि	आर्द्रा ,, ८।३४ बजेतक	८ ,,	**मृगशिराका सूर्य** प्रातः ७।१२ बजे।
तृतीया ,, ४।१२ बजेतक	रवि	पुनर्वसु ,, ९।२४ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ४।२९ बजेसे, **कर्कराशि** दिनमें ३।११ बजेसे।
चतुर्थी ,, ४।४६ बजेतक	सोम	पुष्य ,, १०।४४ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** दिनमें ४।४६ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल** रात्रिमें १०।४४ बजेसे।
पंचमी सायं ५।४५ बजेतक	मंगल	आश्लेषा ,, १२।३१ बजेतक	११ ,,	**सिंहराशि** रात्रिमें १२।३१ बजेसे।
षष्ठी रात्रिमें ७।१४ बजेतक	बुध	मघा ,, २।४३ बजेतक	१२ ,,	**मूल** रात्रिमें २।४३ बजेसे।
सप्तमी ,, ९।१ बजेतक	गुरु	पू०फा० रात्रिमें शेष ५।११ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ९।१ बजेसे।
अष्टमी ,, ११।० बजेतक	शुक्र	उ०फा० अहोरात्र	१४ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।१ बजेतक, **कन्याराशि** दिनमें ११।५० बजेसे।
नवमी ,, १।२ बजेतक	शनि	उ०फा० दिनमें ७।४८ बजेतक	१५ ,,	**मिथुन संक्रान्ति** प्रातः ७।२७ बजे।
दशमी ,, २।५४ बजेतक	रवि	हस्त ,, १०।२३ बजेतक	१६ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें ११।३६ बजेसे, **श्रीगंगादशहरा।**
एकादशी रात्रिशेष ४।३० बजेतक	सोम	चित्रा दिनमें १२।४८ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** दिनमें ३।४२ बजेसे रात्रिशेष ४।३० बजेतक, **निर्जला (भीमसेनी) एकादशीव्रत (स्मार्त)।**
द्वादशी अहोरात्र	मंगल	स्वाती दिनमें २।५२ बजेतक	१८ ,,	**एकादशीव्रत (वैष्णव)।**
द्वादशी प्रातः ५।४१ बजेतक	बुध	विशाखा ,, ४।३० बजेतक	१९ ,,	**वृश्चिकराशि** दिनमें १०।६ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, ६।२६ बजेतक	गुरु	अनुराधा सायं ५।४१ बजेतक	२० ,,	**मूल** सायं ५।४१ बजेसे।
चतुर्दशी ,, ६।३८ बजेतक	शुक्र	ज्येष्ठा ,, ६।२२ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** प्रातः ६।३८ बजेसे सायं ६।२९ बजेतक, **धनुराशि** सायं ६।२२ बजेसे, **व्रत-पूर्णिमा।**
पूर्णिमा ,, ६।१९ बजेतक	शनि	मूल ,, ६।३३ बजेतक	२२ ,,	**पूर्णिमा, आर्द्रामें सूर्य** दिनमें ८ बजे।

कृपानुभूति

(१)

चिंचोली हनुमान्‌जीकी कृपा

घटना सन् २००३ नवम्बर शनिवारकी है। मैं सब कामसे निवृत्त होकर बैठी थी कि पतिदेवने कहा कि सब काम हो गया है। आज शनिवार है, हनुमान्‌जीके दर्शन करके आ जाते हैं। मैंने कहा—आप जाकर हो आइये, आज तो मेरा चलनेका विचार नहीं है। उनके बहुत आग्रह करनेपर आखिर मैं मन्दिर जानेको तैयार हो गयी।

हनुमान्‌जीके दर्शन करके हम दोनों मन्दिरसे बाहर निकलकर घर जानेके लिये सड़कके किनारे खड़े थे। इसी बीच एक पानीभरा हुआ ट्रक तेज गतिसे आया और मुझे झटकेके साथ सड़कपर धक्का दे दिया। ट्रकके पीछेके दोनों पहिये मेरे दोनों पैरोंको कुचलते हुए चले गये। मेरे पतिदेव सहायताके लिये चिल्लाये। इसपर एक सज्जन आगे आये। उन्होंने मुझे रिक्शेपर बैठाया और अस्पतालकी ओर चल पड़े। पहले जिस अस्पतालमें गये, वहाँके डॉक्टरने कहा 'केस सीरियस है, किसी बड़े अस्पतालमें ले जाओ।' मैंने अपने पारिवारिक डॉक्टरसे सम्पर्क किया। उन्होंने कहा—'लीलावती अस्पताल ले जाओ।' मैंने कहा—हालत बहुत खराब है, वहाँतक जाना मुश्किल है। किसी पासके अस्पतालका नाम बताइये। उन्होंने मनीषा नर्सिंग होमका पता दिया और कहा कि मैं एम्बुलेन्स भेज रहा हूँ और डॉक्टरको भी फोन कर देता हूँ।

टैम्पो लहूलुहान हो गया था। इतनेमें हमारे घरवाले तथा पहचानवाले आ गये थे। वे सज्जन जो हमारे साथ थे, वे मेरी आज्ञा लेकर चले गये।

अस्पताल पहुँचते ही डॉक्टरने ऑपरेशन थियेटरमें ले जानेको कहा। मुझे कुछ होश नहीं था। डॉक्टर साहबने बच्चोंको बुलाकर कहा कि बचनेकी उम्मीद बहुत कम है। अगर २४ घण्टे निकाल लिये तो कुछ उम्मीद हो सकती है, परंतु दोनों पैर तो काटने ही पड़ेंगे। मैं अपना काम करता हूँ, बचानेवाला तो ईश्वर है, आपलोग उसको याद कीजिये।

डॉक्टर भगवान्‌का रूप था, उसने एक-एक अँगुली और अँगूठेकी कपड़ेकी भाँति सिलाई की। मुझे आई०सी०यू० वार्डमें भरती कर लिया गया। दो दिन बाद होश आया। डॉक्टर साहब आये, उन्होंने कहा—माताजी! आपको भगवान्‌ने जीवनदान दिया है। अब आप पैरोंकी उँगलियोंको हिलानेकी कोशिश कीजिये, जिससे रक्तका संचार चालू हो जाय। शायद आपके पैर भी बच जायँ। दो दिनके प्रयासके बाद रक्तका संचार चालू हो गया। डॉक्टर साहबने कहा—आपपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है, पैर भी काटनेकी जरूरत नहीं पड़ी, अब तो मैं आपको चला करके ही घर भेजूँगा।

मैं एक मासतक अस्पतालमें रही। कुछ दिन बाद वाकर लेकर चलने लगी। धीरे-धीरे सबकुछ सामान्य हो गया। अब मैं अपना सब काम कर लेती हूँ और बिना सहायताके चल लेती हूँ।

यह सब हनुमान्‌जीकी कृपाका चमत्कार है। मैं उनके दरबारमें खड़ी थी, उन्होंने ही मुझे आकर जीवन-दान दिया और पैरोंको काटनेसे बचाया।

[श्रीमती जसकौर दबे]

(२)

भगवन्नाम और हनुमानबाहुकका चमत्कार

मैं कल्याणका वार्षिक सदस्य हूँ। अतः मैं इसमें प्रकाशित भगवत्कृपाकी घटनाको पढ़ता रहता हूँ और इसके प्रयोगोंको जीवनमें उतारता भी रहता हूँ। मेरी माताजीको २८.१.२०१४ को पक्षाघात (फॉलिस) हो गया। उनका आगराके प्रसिद्ध डॉ० गुप्ताका इलाज चल रहा था, लेकिन कोई फर्क नहीं पड़ रहा था। एक महीनेतक जब कोई फर्क नहीं पड़ा, तो हाथरसमें श्रीविनोद कुमार वर्मा जो कि पेशेसे वकील हैं, उन्होंने बताया कि अपनी मम्मीको हनुमानबाहुक सुनाओ और २०१३ ई० में कल्याणमें प्रकाशित भगवान्‌के २४ नाम छन्दमें ४३ पेजपर लिखे हैं, उन्हें भी सुनाओ, मुझे लगा जैसे गिरिराजजीने उनको मेरे पास भेजा हो, मैंने दोनों

ही पाठ मम्मीको सुनाये। गिरिराजजीकी ऐसी कृपा हुई कि जबसे दोनों पाठ मम्मीको सुनाये, उसके दूसरे दिनसे मम्मीको आराम पड़ने लग गया। आज मम्मी अपने-आप चलती हैं, खाती हैं, स्नान आदि अपने नित्यकर्म सब अपने आप करती हैं। हनुमानबाहुक और भगवान्‌के नाम-श्रवणकी महिमाकी यह सच्ची घटना है।

[श्रीशैलेन्द्रजी साँवलिया]

(३)

हनुमान्‌जीने प्राणरक्षा की

बात बहुत पुरानी है, मैं उस समय पाँच-छः वर्षका रहा होऊँगा। हमारे घरमें ऊपरी मंजिलपर हनुमान्‌जीकी एक फुटकी मूर्ति दीवारमें लगी हुई थी, जिसपर समय-समयपर मेरी दादीजी और माताजी सिन्दूर चढ़ाया करती थीं और उस मूर्तिकी पूजा-अर्चना किया करती थीं।

एक दिन मैंने इसके बारेमें अपनी दादीजीसे पूछा कि आप नीचे भी तो भगवान्‌जीकी पूजा करती हैं, फिर ऊपर यह हनुमान्‌जीकी मूर्तिका क्या रहस्य है? तब मेरी दादीजीने कहा कि यह हनुमान्‌जीकी मूर्ति बड़ी जाग्रत् है। इस सम्बन्धमें दादीजीने मुझे एक घटना भी सुनायी, जो मेरे पिताजीसे सम्बद्ध थी। घटना इस प्रकार है—पिताजी हमीरपुर हाईस्कूलमें पढ़ते थे, जबकि हमारा घर सुजानपुर टिहरा (उस समय जिला कांगड़ा और अब जिला हमीरपुर हिमाचल)-में था। शनिवारको मेरे पिताजी हमीरपुरसे सुजानपुर आ जाते थे और सोमवारको प्रातः ही घरसे चलकर स्कूल पहुँच जाते थे। इन दोनोंके मध्यकी दूरी १५ मील है। उस समय बसें आदि बहुत ही कम थीं, आने-जानेका मुख्य साधन पदयात्रा ही था और लोगोंको पैदल चलनेकी आदत थी।

सुजानपुरसे लगभग तीन मील दूरीपर भलेठका दरवाजा पड़ता है, यह एक विशाल दरवाजा है, जिसके दायीं ओर बाहरकी ओर हनुमान्‌जीकी तथा बायीं ओर भैरोजीकी क्रमशः लाल और नीली मूर्तियाँ सुशोभित हैं। दरवाजा पहाड़ीपर है और नीचे पुंघ नामकी खड्ड है, जो कि लगभग उस स्थानसे ५० गजकी दूरीपर व्यास नदीसे जा मिलती है। उस समय उस खड्डपर कोई पुल नहीं था और लोगोंको खड्ड पैदल ही पार करनी पड़ती थी। व्यास नदीके सामीप्यके कारण वह खड्ड बड़ी भयानक थी।

एक रविवारकी रात्रिको भारी वर्षा हुई थी और मेरे पिताजी सोमवारको प्रातः ही हमीरपुरके लिये निकल पड़े। उनके जानेके बाद मेरी दादीको पुंघ खड्डका ध्यान हो आया और वे घबरा गयीं। कोई चारा न देखकर वे हनुमान्‌जीकी घरमें स्थापित मूर्तिसे कातर प्रार्थना करने लगीं कि 'हे वीर बजरंगबली! आप मेरे पुत्रकी रक्षा करना।' सोमवार रातको जब मेरी दादीजी सोयीं, तो हनुमान्‌जी उनके सपनेमें आकर बोले कि 'तेरे पुत्रको मैंने उक्त खड्ड पार करवा दी है चिन्ता मत करो।'

फिर जब शनिवारको मेरे पिताजी घर आये तो उन्होंने बताया कि उक्त खड्डमें उस दिन बड़ा भारी पानी था और वह अभी पार कैसे जायँ यह सोच ही रहे थे कि एक ओरसे एक लम्बा-चौड़ा आदमी निकला, उसने केवल एक लाल रंगका लँगोट पहन रखा था। उसने मेरे पिताजीसे पूछा—बेटा, पार जाना है तो आओ मेरे साथ चलो, मुझे भी पार ही जाना है और मेरे पिताजीको बाँह पकड़कर खड्ड पार करवा दी। खड्ड पार करके थोड़ी चढ़ाई चढ़नेके बाद जब मेरे पिताजीने पीछे मुड़कर देखा तो उस आदमीका कहीं नाम-निशान भी न था। तभी बाल्यकालसे ही मेरे इष्ट हनुमान्‌जी ही हैं और उनकी कृपाका मैंने खूब अनुभव किया है।

भलेठका दरवाजा जो कि मेरी समझके अनुसार करोच राजाओंने एक चैकपोस्टके तौरपर बनवाया होगा, क्योंकि सुजानपुरके महाराजा संसारचन्दकी राजधानी थी और इस दरवाजेके पीछे कुछ कोठरियाँ भी हैं, जो कि सम्भवतः सिपाहियोंके रहनेके काम आती होंगी। इस दरवाजेपर खड़े हनुमान् आज भी पूर्ण जाग्रत् देवता हैं, अब तो ट्रक ड्राइवरोंने इस दरवाजेपर सफेदी आदि करवाकर संकटमोचनद्वार भी लिखवा दिया है। कहते हैं कि इस स्थानपर किसी ट्रकके दोनों अगले टायर सड़कसे खड्डकी ओर निकल गये, परंतु ट्रकको जैसे किसी अदृश्य शक्तिने आगे बढ़कर रोक लिया। [श्रीलक्ष्मीकान्तजी मिश्र]

पढ़ो, समझो और करो

(१)

रिक्शाचालक या देवदूत!

बात है सन् १९८३ ई०के जुलाई महीनेकी, मुझे 'लोकप्रशासन और जनसंचार'में संक्षिप्त प्रशिक्षणके लिये इंग्लैण्ड (यू०के०) जानेहेतु शासनसे अनुमति मिल गयी थी। चूँकि प्रशिक्षण १ अगस्त १९८३ से लंदनमें प्रारम्भ हो रहा था, इसलिये शासकीय प्राथमिकताके आधारपर मैंने पासपोर्टका आवेदन अपने मण्डलायुक्त मुरादाबादकी प्रबल संस्तुतिके साथ पासपोर्ट कार्यालय बरेलीमें जमा करा दिया था।

आवेदनकी पैरवीके लिये मैंने बरेलीके अपने एक अधिकारी साथीसे अनुरोध कर लिया था कि वे शासकीय वरीयता क्रममें पासपोर्ट बनवानेकी कार्यवाही सुनिश्चित कर लें। २५ जुलाई १९८३की शाम उनका (मेरे अधिकारी मित्रका) फोन आया कि आप बरेली तुरंत आकर अपना पासपोर्ट क्षेत्रीय कार्यालयसे प्राप्त कर लें। उन्होंने क्षेत्रीय पासपोर्ट अधिकारीसे अनुरोध कर लिया है कि पासपोर्ट डाकसे न भिजवाएँ; क्योंकि डाकमें समय अधिक लग सकता है। इस प्रकरणमें समयाभावको दृष्टिगत रखते हुए विशेष दशामें व्यक्तिगत रूपसे पासपोर्ट सुलभ करानेके लिये पटल सहायकको निर्देश देनेका कष्ट करें। उनके अनुरोधपर क्षेत्रीय पासपोर्ट अधिकारीने पटल सहायकको डाकसे न भेजकर मुझे व्यक्तिगत रूपसे पासपोर्ट प्रदान करनेके निर्देश दे दिये थे।

मैंने फोनपर अपने अधिकारी मित्रसे निवेदन किया कि वे पटल सहायकको अवगत करा दें कि मैं आज दोपहरतक बरेली आकर पासपोर्ट प्राप्त कर लूँगा। उन्होंने मुझे बताया कि वह आज रात्रिमें लखनऊ एक बैठकमें भाग लेने जा रहे हैं, इसलिये उन्होंने अपने एक कर्मचारीको कह दिया है कि वह सुबह पासपोर्ट कार्यालयके सम्बन्धित पटल सहायकको यह संदेश दे दे कि सम्बन्धित व्यक्ति आज दोपहरतक उससे हर दशामें पासपोर्ट प्राप्त कर लेगा।

२६ जुलाई १९८३को सुबह अपने आवाससे मैंने बरेलीके लिये प्रस्थान किया। प्रातः ९ बजेके लगभग जैसे ही मैंने रामपुर शहरमें प्रवेश किया, अचानक मेरी कारमें कोई खराबी आ गयी। ड्राइवरने बहुत प्रयास किया किंतु कार उससे ठीक नहीं हुई तो उसने कहा कि इंजनमें शायद कोई बड़ी खराबी आ गयी है, इसलिये किसी अच्छे मोटर मैकेनिकको दिखाना होगा। चूँकि मेरे पास समयाभाव था। अतः मैंने निर्णय लिया कि मैं बरेली किसी बससे चला जाऊँ। कारके साथ अपना अर्दली (अनुचर) वहीं छोड़ दिया कि ड्राइवरके काममें वह सहायता करेगा। तभी दिल्लीसे आ रही बसको ड्राइवरने भागकर रुकवा दिया और मैं उस बसमें, जो बरेली ही जा रही थी, बैठ गया।

बस ११.३० बजेके लगभग बरेली बस अड्डेपर पहुँची। आनन-फाननमें बससे उतरकर मैंने एक रिक्शा रोका और पासपोर्ट कार्यालयके लिये चल दिया। रास्तेमें मैंने रिक्शाचालकको अपनी व्यथा-कथा सुना डाली और उससे अपेक्षा की कि पासपोर्ट कार्यालयमें थोड़ी देर रुक जाय ताकि पासपोर्ट लेकर मैं पुनः इसी रिक्शेसे बस अड्डे पहुँच सकूँ। रिक्शेवालेने मेरी बात मान ली, परंतु कुछ दूर रिक्शा चला कि वर्षा होने लगी। मैंने रिक्शाचालकसे कहा कि भैया! कहीं पेड़के नीचे अथवा किसी ऐसी जगह रिक्शा खड़ा कर लो, जिससे इस वर्षासे बचा जा सके। उसने पासके एक घने पेड़के नीचे रिक्शा रोका और रिक्शाकी छतरी (हुड) ऊपर तान दी और कहा कि—'आप! इसके नीचे बैठ जायँ। 'मैंने कहा—'तुम तो भीग जाओगे'। उसने कहा—'साहब! आपको जल्दी लौटना है, वर्षा ऋतु है, मैं तो सुबहसे शामतक कई बार भीगकर सूखता रहता हूँ। आप मेरी परवाह न करें, अपना जरूरी काम देखें।'

परिस्थितिवश उसकी बात मानकर मैं रिक्शेमें बैठ गया। पासपोर्ट कार्यालय पहुँचते-पहुँचते वर्षा कुछ कम हुई थी, फिर भी रिक्शाचालक भीग गया था। उसने पासपोर्ट कार्यालय गेटके पास रिक्शा रोक दिया। मैंने

उसे १०० रुपयेका नोट देते हुए कहा, यह रख लो। मैं अभी आता हूँ। उसने नोट लेनेसे इनकार करते हुए कहा कि १० रुपये आपके पास हों तो दे दें, वरना कोई बात नहीं। मैं आपका इंतजार करूँगा। चूँकि मेरे पास १० रुपयेका नोट नहीं था, इसलिये मैं उसकी बात मानकर तेज गतिसे कार्यालयके अन्दर गया और निर्गत काउण्टरपर अपना पासपोर्ट प्राप्तकर अतिशीघ्रतासे बाहर आकर उसी रिक्शेमें बैठ गया, जिससे मैं आया था।

रिक्शाचालकको मैंने कहा—'भैया! जल्दी मुझे बस अड्डे पहुँचा दो, ताकि मैं शीघ्र मुरादाबाद पहुँच सकूँ। मुझे आज ही रात दिल्लीके लिये प्रस्थान करना है, ताकि कल दिल्लीमें यात्राकी आगेकी औपचारिकताओंको पूर्ण करनेकी कार्यवाही शुरू कर सकूँ। तभी मैंने देखा कि डीटीसीकी बस दिल्लीकी तरफ जा रही है। मैंने रिक्शाचालकसे कहा कि—भैया! यह बस रुकवाना, उसने रिक्शा सड़कके किनारे खड़ा किया और दौड़कर बस रुकवायी। मैं जल्दीसे रिक्शेसे उतरा और १०० रुपयेका नोट रिक्शेकी सीटपर रखकर दौड़ते हुए बसमें चढ़ गया और मुरादाबादका टिकट लेकर अपनी सीटपर बैठ गया। जैसे ही मैंने अपनी पैण्टकी जेबमें पासपोर्टका लिफाफा निकालनेको हाथ डाला, जेबमें पासपोर्टका लिफाफा न पाकर मेरे होश उड़ गये।

सोचने लगा कि बसमें चढ़ते समय गिर गया होगा। बहुत माथापच्चीके बाद विचार आया कि अभी समय है, पासपोर्ट कार्यालय जाकर डुप्लीकेट पासपोर्टका आवेदन करेंगे। इसके लिये क्या औपचारिकताएँ होंगी, चलकर क्षेत्रीय पासपोर्ट अधिकारीसे मिलकर अपनी स्थिति बताते हैं, शायद वे नियमोंमें शिथिलता कर मेरी सहायता कर दें। इसी विचारसे मैंने पासपोर्ट कार्यालय जानेका निश्चयकर बस कण्डक्टरको अपनी समस्या बता, बस रोकनेका अनुरोध किया।

बस कण्डक्टरने बड़ा सूझबूझपूर्ण सुझाव दिया कि चूँकि बस बरेली शहरसे बाहर निकल चुकी है। यहाँ आपको आसानीसे कोई वाहन आदि नहीं मिलेगा। अत: आप परेशान न हों, जैसे ही मुझे मुरादाबादकी तरफसे कोई बस आती दिखेगी, उसे रुकवाकर आपको उसमें बैठा दूँगा।

वही हुआ, करीब १० मिनटके बाद एक बस मुरादाबाद डिपोकी आती दिखी, उसने बस रुकवाकर मुझे उस बसमें बैठा दिया और उस बसके कण्डक्टरसे यह भी कह दिया कि इन साहबने मुरादाबादका टिकट लिया है, लेकिन एक आवश्यक कार्यसे बरेली लौटना पड़ रहा है। इनसे अब टिकट मत लेना। इसका असर यह हुआ कि मेरे काफी अनुरोधपर भी उसने टिकट नहीं दिया तथा मेरी समस्या सुनकर उसने सहानुभूति दिखाते हुए बस अड्डेसे पहले उस चौराहेपर बस रुकवा दी, जहाँसे पासपोर्ट कार्यालय निकट पड़ता था।

बससे उतरकर मैंने एक रिक्शा पासपोर्ट कार्यालय जानेके लिये किया और जल्दीसे पासपोर्ट कार्यालयके मुख्यद्वारपर पहुँचा, तभी पीछेसे एक आवाजने मेरा ध्यान उस तरफ आकर्षित किया, जिस तरफ वही रिक्शाचालक कह रहा था, 'साहब! हड़बड़ीमें गड़बड़ी हो गयी', कहकर वह अपने रिक्शेसे उतरकर मेरी तरफ आया और पॉलीथीन थैलीमें लिपटा हुआ, वही पासपोर्टका लिफाफा मुझे पकड़ाते हुए बोला, भीग न जाय, इसलिये मैंने इसे पॉलीथीनकी थैलीमें छिपा दिया है। खोलकर देख लीजिये, आपका पासपोर्ट सुरक्षित है।

मुझे लगा कि कोई देवदूत मेरी सहायता करने आ गया। पॉलीथीनकी थैली खोलकर देखा लिफाफेमें मेरा पासपोर्ट रखा था और साथमें ८० रुपये। मैं कुछ कहूँ, इसके पहले वह बोल पड़ा, आपकी बस रुकवाकर मैं जैसे ही अपने रिक्शेपर आया, देखा १०० रुपयेके नोटके पास नीचे पायदानपर आपका यह लिफाफा पड़ा है। मैंने तुरंत उठाकर आपको आवाज दी, लेकिन तबतक बस चल चुकी थी। फिर मैंने सोचा कि आप जब बसमें

अपना पासपोर्ट देखेंगे और न पाकर तुरंत पासपोर्ट ऑफिस आयेंगे। यही सोचकर मैंने कोई सवारी नहीं ली, सीधा पासपोर्ट कार्यालय आ गया, सोचा घण्टे-दो घण्टे आपका इन्तजार करके पासपोर्ट कार्यालयमें जाकर यह जमा कर दूँगा। जब आप आयेंगे तो आपको यह मिल ही जायगा। मैंने ८० रुपये भी इसी लिफाफेमें रख दिये थे कि आपको यह रुपये भी मिल जायँ। मैंने अपनी मेहनतके बीस रुपये रख लिये हैं। मैंने उसे और पैसा देना चाहा तो उसने कहा—'साहब! गरीब हूँ, लेकिन ईमान नहीं बेचता। आप जरूरतमन्द हैं, जो कहूँगा आप खुशी-खुशी दोगे। लेकिन किसीकी मजबूरीका फायदा उठाना पाप है साहब, महापाप!' मैंने आत्मीयताके नाते उसका नाम पूछा तो वह मुसकुराते हुए बोला—साहब! नाम पूछकर क्या अखबारमें दोगे। हम छोटे लोग हैं, हम अपनी औकात जानते हैं। मेहनत-मजदूरी करके परिवार पालते हैं। किसीकी चोरी नहीं करते, ईमानदारीसे जीते हैं। आपके साथ मैंने कोई उपकार नहीं किया साहब। इंसान होनेके नाते यह तो मेरा फर्ज था साहब। मैंने इंसानियत की है, इसकी कोई कीमत नहीं होती। आप साहब इसी रिक्शेसे वापस बस अड्डा चले जाइये, आपको बहुत काम करना है, इतना कहकर वह नमस्ते कर अपना रिक्शा लेकर वहाँसे चला गया।

उसकी बातें सुनकर मुझे लगा कि मैं किसी रिक्शेवालेके समक्ष नहीं, किसी देवदूतके सामने खड़ा हूँ। **[श्रीइन्दलसिंहजी भदौरिया]**

(२)

धर्मपुत्री

कुछ समय पूर्वकी बात है, मैं अपने एक रिश्तेदारसे मिलनेके लिये अस्पतालमें गया। उनकी चारपाईके सामने एक मारवाड़ी वृद्धाकी खाट थी। उसके पास एक युवक मधुर मन्द-स्वरमें भजन गा रहा था। भजनमें रस आनेसे मैं भी उसके पासमें जा बैठा।

'बेटा! एक दूसरा भजन गाओ तो।' एक भजन पूरा होते ही वृद्धा बोली। 'तेरे कण्ठमें भगवान्‌ने जितनी मिठास भरी है, उससे कहीं अधिक मिठास तेरे हृदयमें भर दी है। तेरी सेवाका बदला तो भगवान् ही देंगे।'

वृद्धाके इच्छानुसार उस भाईने सिन्धी भाषामें दूसरा भजन आरम्भ किया। वह भाई सिन्धी था। थोड़ी देरके बाद थरमसमें दूध, ताजे फल एवं खिचड़ी लेकर उसकी पत्नी आयी और उस वृद्धाके सामने आकर बैठ गयी।

'बेटा!' वृद्धाने भजन पूरा हो जानेके बाद कहा—'सगा पुत्र भी जितनी सेवा नहीं कर सकता, उतनी सेवा तुमलोग आज दस दिनसे कर रहे हो।'

'माँजी!' युवककी पत्नीने कहा—'आप अधिक कहेंगी तो हमलोग चले जायँगे। हमने इसमें कौन-सा उपकार किया है, जो हमें इतना यश आप दे रही हैं?'

'यह ठीक बात है, बेटी!' वृद्धाकी आँखोंमें आँसू भर आये। वह बोली—'मेरा बेटा तो खबर मिलनेके बाद भी नहीं आया, न उसने अपनी बहूको ही भेजा और तुम.....'

—'तो क्या हमलोग कोई पराये हैं?' भैया और भाभीको कोई खास काम आ गया होगा, इसलिये वे नहीं आ सके होंगे। अभी तो अस्पतालसे छुट्टी मिलनेपर हमलोग आपको अपने घर ले जानेवाले हैं। जबतक आपको पूर्ण आराम न हो जाय, तबतक अपने साथ ही आपको रखेंगे—सिन्धी भाई बोला।

—'और माँजी!' पत्नी बोली—'शुरू-शुरूमें जब हमलोग आपके मकानमें रहनेके लिये आये थे, तब आपने मुझसे कहा था—'बेटी! तुझे देखकर मुझे अपनी बेटी मोहिनीकी याद आ जाती है।' अब आप ही कहिये, माँजी! कि आपकी यह मोहिनी आपको बीमार हालतमें अकेली कैसे छोड़ सकती है? हमलोगोंने संयोगवश मकान बदल लिया, किंतु मकान बदलनेसे आपसे मिले हृदयको कैसे बदल सकते हैं?

—मैंने उस वृद्धा और युवा सिन्धी-दम्पतीके साथ जितना समय व्यतीत किया, वह मेरे लिये स्वर्गीय सुखका समय था। 'अखण्ड आनन्द' **[श्रीमती गुणवन्तीजी त्रिवेदी]**

मनन करने योग्य

दूसरोंके दोष मत देखो

वे नागा साधु थे। एक नागा साधुके समान ही उनमें तितिक्षा थी, तपस्या थी, त्याग था और था अक्खड़पना। साधु तो रमते-राम ठहरे, जहाँ मन लगा; वहीं धूनी भी लग गयी। वे नागा महात्मा घूमते हुए श्रावस्ती नगरीमें पहुँचे। एक नीमका छायादार सघन वृक्ष उन्हें अच्छा लगा। वृक्षके चारों ओर चबूतरा था। साधुने वहीं धूनी लगा ली।

जहाँ साधुकी धूनी लगी थी, उसके सम्मुख ही नगरकी एक वेश्याकी अट्टालिका थी। उसके भवनमें पुरुष तो आते-जाते ही रहते थे। साधुको पता नहीं क्या सूझी, जब वेश्याके घरमें कोई पुरुष जाता, तब वे एक कंकड़ अपनी धूनीके एक ओर रख देते। उनके कंकड़ोंकी ढेरी पहले ही दिन भूमिसे ऊँची दीखने लगी। कुछ दिनोंमें तो वह अच्छी बड़ी राशि हो गयी।

एक दिन जब वह वेश्या अपने भवनसे बाहर निकली तब साधुने उसे समीप बुलाकर कहा—'पापिनी! देख अपने कुकृत्यका यह पहाड़! अरी दुष्टे! तूने इतने पुरुषोंको भ्रष्ट किया है, जितने इस ढेरमें कंकड़ हैं। अनन्त-अनन्त वर्षोंतक तू नरकमें सड़ेगी।'

वेश्या भयसे काँपने लगी। उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा चलने लगी। साधुके सामने पृथ्वीपर सिर रखकर गिड़गिड़ाती हुई बोली—'मुझ पापिनीके उद्धारका उपाय बतावें प्रभु!'

साधु क्रोधपूर्वक बोले—'तेरा उद्धार तो हो ही नहीं सकता। यहाँसे अभी चली जा। तेरा मुख देखनेके कारण मुझे आज उपवास करके प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।'

वेश्या भयके मारे वहाँसे चुपचाप अपने भवनमें चली गयी। पश्चात्तापकी अग्निमें उसका हृदय जल रहा था। अपने पलंगपर मुखके बल पड़ी वह हिचकियाँ ले रही थी—'भगवान्! परमात्मा! मुझ अधम नारीको तो तेरा नाम भी लेनेका अधिकार नहीं। तू पतितपावन है, मुझपर दया कर!'

उस पश्चात्तापकी घड़ीमें ही उसके प्राण प्रयाण कर गये और जो पापहारी श्रीहरिका स्मरण करते हुए देह-त्याग करेगा, उसको भगवद्धाम प्राप्त होगा, यह तो कहनेकी बात ही नहीं है।

उधर वे साधु घृणापूर्वक सोच रहे थे—'कितनी पापिनी है यह नारी! आयी थी उद्धारका उपाय पूछने, भला ऐसोंका भी कहीं उद्धार हुआ करता है।'

उसी समय साधुकी आयु भी पूरी हो रही थी। उन्होंने देखा कि हाथमें पाश लिये, दण्ड उठाये बड़े-बड़े दाँतोंवाले भयंकर यमदूत उनके पास आ खड़े हुए हैं। साधुने डाँटकर पूछा—'तुम सब क्यों आये हो? कौन हो तुम?'

यमदूतोंने कहा—'हम तो धर्मराजके दूत हैं। आपको लेने आये हैं। अब यमपुरी पधारिये।'

साधुने कहा—'तुमसे भूल हुई दीखती है। किसी औरको लेने तुम्हें भेजा गया है। मैं तो बचपनसे साधु हो गया और अबतक मैंने तपस्या ही की है। मुझे लेने धर्मराज तुम्हें कैसे भेज सकते हैं? हो सकता है कि तुम इस मकानमें रहनेवाली वेश्याको लेने भेजे गये हो।'

यमदूत बोले—'हमलोग भूल नहीं किया करते। वह वेश्या तो वैकुण्ठ पहुँच चुकी। आपको अब यमपुरी चलना है। आपने बहुत तपस्या की है; किंतु बहुत पाप भी किया है। वेश्याके पापकी गणना करते हुए आप निरन्तर पाप-चिन्तन ही तो किया करते थे और इस मृत्युकालमें भी तो आप पाप-चिन्तन ही कर रहे थे। अब आपके पाप-पुण्यके भोगोंका क्रम-निर्णय धर्मराज करेंगे।'

साधुके वशकी बात अब नहीं थी। यमदूतोंके पाशमें बँधा प्राणी यमपुरी जानेको विवश होता ही है।

[श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र']

अप्रैल 2023 से प्रकाशित नवीन प्रकाशन

कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
2318	चित्रमय सं० शिवपुराण, मोटा टाइप केवल हिन्दी (रंगीन)	1500
2319	गीता-संग्रह (द्वितीय गुच्छक) सजिल्द	120
2322	गजल-गीता (रंगीन)	2
2328	श्रुतिवचनामृत	40
2331	श्रीरामाङ्क	400
	बँगला	
2307	चित्रमय श्रीमद्भगवद्गीता श्लोकार्थसहित चार रंगोंमें	300
2317	अष्टविनायक (पत्रिका)	25
	ओड़िआ	
2323	श्रीभक्तचरितामृत	350

कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
	तेलुगु	
2327	भागवतपुराण मूल मोटा, बेड़िआ	500
	नेपाली	
2320	श्रीमद्भागवतमहापुराण सटीक, खण्ड-1	400
2321	श्रीमद्भागवतमहापुराण सटीक खण्ड-2	400
2325	श्रीशिवमहापुराण सटीक खण्ड-1	400
2326	श्रीशिवमहापुराण सटीक खण्ड-2	400
2329	श्रीविष्णुपुराण नेपाली अनुवादसहित	230
2332	श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण सटीक खण्ड-1	350
2333	श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण सटीक खण्ड-2	350

महाभारत (सटीक) कोड 728, ग्रन्थाकार—छः खण्डोंमें सेट— महाभारत भारतीय संस्कृतिका अद्भुत महाग्रन्थ है। इसे पंचम वेद भी कहा जाता है। इस महाग्रन्थमें उपनिषदोंका सार, इतिहास, पुराणोंका उन्मेष, निमेष, चातुर्वर्णका विधान, पुराणोंका आशय, ग्रह, नक्षत्र, तारा आदिका परिमाण, तीर्थों, पुण्य देशों, नदियों, पर्वतों, समुद्रों तथा वनोंका वर्णन होनेके कारण यह अत्यन्त गूढ़, गुह्य रत्नोंका भण्डार है। मूल्य ₹3000, डाकखर्च ₹450

महाभारतके विभिन्न खण्डोंका विवरण

कोड	खण्ड	विवरण	मू०₹	डाकखर्च
32	प्रथम खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, आदिपर्वसे सभापर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	500	90
33	द्वितीय खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, वनपर्वसे विराटपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	500	90
34	तृतीय खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, उद्योगपर्वसे भीष्मपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	500	90
35	चतुर्थ खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, द्रोणपर्वसे स्त्रीपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	500	90
36	पञ्चम खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, शान्तिपर्व, सचित्र, सजिल्द।	500	90
37	षष्ठ खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, अनुशासनपर्वसे स्वर्गारोहणपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	500	90

संक्षिप्त महाभारत (दो खण्डोंमें) कोड 39, 511, ग्रन्थाकार—मूल्य ₹760, डाकखर्च ₹110 (गुजराती, बँगला, तेलुगु भी)

महाभारत-सटीक (तेलुगु)-के सभी सात खण्ड उपलब्ध

कोड 2141—2147, मूल्य ₹2800

प्रत्येक खण्ड अलग-अलग भी उपलब्ध, प्रत्येक खण्डका मूल्य ₹400, डाकखर्च ₹90 अतिरिक्त

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—व्रत-कथाओंकी पुस्तकें

व्रत-परिचय (कोड 610)—प्रस्तुत पुस्तकमें प्रत्येक मासमें पड़नेवाले व्रतोंके विस्तृत परिचयके साथ उन्हें सही ढंगसे सम्पादित करनेकी विधि दी गयी है। मूल्य ₹ 70

एकादशीव्रतका माहात्म्य (मोटा टाइप) कोड 1162—इस पुस्तकमें पद्मपुराणके आधारपर 26 एकादशियोंके माहात्म्य तथा विधिका बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। मूल्य ₹35

वैशाख-कार्तिक-माघमास-माहात्म्य (कोड 1136)—इस पुस्तकमें पद्मपुराण तथा स्कन्दपुराणमें वर्णित इन तीनों महीनोंके माहात्म्यका वर्णन किया गया है। मूल्य ₹50

श्रीसत्यनारायणव्रतकथा (कोड 1367)—इस पुस्तकमें भगवान् सत्यनारायणके पूजनविधिके साथ स्कन्दपुराणसे उद्धृत सत्यनारायणव्रतकथाको भावार्थसहित दिया गया है। मूल्य ₹20

प्र० ति० 20-03-2024
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2023-2025
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2023-2025

सावधान

1- गीताप्रेस, गोरखपुरके नामसे कोई प्रचार-वाहन गीताप्रेस नहीं चलाता है।
2- पुस्तकें एवं आयुर्वेदिक औषधिओंके अतिरिक्त गीताप्रेस अन्य कोई सामान न ही बनाता है, न बेचता है।
3- गीताप्रेसके नामपर अनेकों सामग्री जैसे—अँगूठी, माला, झोली इत्यादि वस्तुएँ बेची जा रही हैं, जिनसे गीताप्रेसका कोई सम्बन्ध नहीं है।
4- किसीके निधनपर नाम/फोटो आदि छापकर पुस्तक वितरित करनेके लिये गीताप्रेस न किसीसे सम्पर्क करता है और न ही उपलब्ध कराता है।
5- गीताप्रेसके संस्थापक एवं गीताप्रेससे सम्बन्धित संतोंके नामपर डिजिटल मीडियामें अनेकों प्लेटफार्म बनाकर लोगोंको भ्रमित किया जा रहा है। ऐसे नामोंका कोई प्लेटफार्म गीताप्रेसका नहीं है।
6- गीताप्रेसके लोगो (मोनोग्राम) का प्रयोग कुछ स्वार्थीलोग अपने निजी व्यवसायके लिये कर रहे हैं जो गैर-कानूनी है।
7- कल्याण मासिक-पत्रके नामपर व्यापार करके लोगोंको गुमराह किया जा रहा है।
8- गीताप्रेसके नामपर किसीको डोनेशन न दें। गीताप्रेस किसी प्रकारका डोनेशन स्वीकार नहीं करता है।

आप सभीसे आग्रह है कि अपने स्तरसे भी आप अपने क्षेत्रमें WhatsApp ग्रुप, डिजिटल मीडिया, प्रिन्ट मीडिया आदिके माध्यमसे उपर्युक्त प्रचार करें, जिससे लोग जागरूक हों, ठगीसे बचें एवं गीताप्रेसकी छबिको धूमिल होनेसे बचायें।

गीताप्रेसकी पुस्तकें एवं कल्याण गीताप्रेसकी अधिकृत वेबसाइट **www.gitapress.org** or **gitapressbookshop.in** से ही ऑन लाइन मँगवायें या सदस्य बनें।

कल्याण एवं पुस्तकोंसे सम्बन्धित जानकारीके लिये : **9235400242 / 244**
कल्याण विभाग— **WhatsApp : 9235400242**
पुस्तक विभाग— **WhatsApp : 9235400244**

e-mail : **booksales@gitapress.org**—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
Gita Press web : **gitapress.org**—सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

गीताप्रेसकी पुस्तकें Online कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये—
www.gitapress.org; gitapressbookshop.in

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)